

तत्वमाला

अर्थात्

जिनेन्द्रमत दर्पण—द्वितीय भाग

श्रीतल्लप्रसाद जैनी लखीमऊ, निवासी
द्वारा सम्पादित

भारत-जैन-महामंडल द्वारा प्रकाशित

तथा

प० सुदर्शनाचार्य, बी० ए०, के प्रबन्ध से
सुदर्शन प्रेस, प्रयाग
में मुद्रित।

सन १९११ ई०

द्वितीय आवृत्ति १०००]

[मूल्य ४ आना

आत्मा अनात्माना अनंत जावनेदने अवलंबती अगाध ज्ञानीउने गम्य एवी स्याद्वाद शैलीथी तत्त्वनुं संपूर्ण ज्ञान तो सर्वज्ञ सर्वदर्शने ज शक्य ठे, परंतु यथामति-शक्ति-नवतत्त्वनुं स्वरूप जाणवुं सर्व मनुष्योने शक्य ठे. तेनां स्मरण मननथी मनुष्योमां विवेकबुद्धि जागृत थाय ठे, सम्यक्त्वनो लाज थाय ठे, अने कल्याणकारी आत्मज्ञाननो शुभ उदय थाय ठे. तदुपरांत नवतत्त्वमां लोकालोकनां संपूर्ण स्वरूपनुं संक्षिप्त विवरण होइ साधारण बोधवाळी व्यक्तिउपण आवश्यक तत्त्वज्ञान मेळवी द्रष्टिनी विशालता अने समजाव प्राप्त करी शके ठे, के जेनां पूण्यप्रजावे आत्मज्ञाननो निर्मळ रस उद्भव ठे.

अनंत ज्ञानना अधिष्ठानरूप श्री तीर्थकर जगवाने ज्ञानप्रजावे लोकालोकना अनंत जाव अने जेदो जोया तथापि जनसमूहनां कल्याणार्थे

योग्य, ज्ञेय-जाणवा योग्य अने उपादेय-ग्रहण करवा योग्य.”

श्रीमन् महावीर जगवानना प्ररूपेला शासनमां मतमतांतरो परुवानां एक मुख्य कारण रूपे-उपासक वर्गनी-तत्त्वज्ञान प्रत्येनी उदासीनता अने मात्र विधिविधानरूप क्रियाकाणरुमांज यती प्रवृत्तिं गणी शकाय.

आ पृथ्वीतल पर वसती मानव मेदिनी दोढ अब्ज (लगजग) पैकीनी मात्र तेर लाख जेटली श्रमणोपासक जैन प्रजा लेखीए. तो तेमांये नवतत्त्वने सारी रीते जाणनार फक्त गण्या गांव्या-बटके आंगळीना वेढाये गणी शकाय तेटलाज हशे.

तत्त्वज्ञान संवंधीनी आ शोचनीय स्थितिने प्रतापेज मतमतांतरो सरजाय ठे-एम कहेनार के माननारने आपणे खोटा नहि कही शकीए.

श्री नवतत्त्वनां पठन-मननथी पांच महाव्रतो

विषय-सूची ।

वि	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सन्नतत्व	६	ध्यान	७१
जीवतत्व	७	धर्म ध्यान	७२
अजीवतत्व	१५	ध्यान का स्थान	७६
ज्ञानावस्था के	२१	ध्यान का आसन	७६
दृशनावस्था के	२६	प्राणायाम	८०
वेदनी कर्म	२८	प्रत्याहार धारणा	८३
मोहनी कर्म	३०	ध्येय	८४
आयु कर्म	४१	ध्यान और फल	८५
नाम कर्म	४५	निराकार का ध्यान साकार	
गोत्र कर्म	५४	के द्वारा हो सकता है	८७
अनराय कर्म	५५	पिंडस्थ ध्यान मार्ग	८८
अन्य ४ द्रव्य	५७	पदस्थ ध्यान	९३
आश्रय तत्व	६०	रूपस्थ ध्यान	९८
बध तत्व	६१	रूपानात ध्यान	९९
सवर तत्व	६३	मोक्ष तत्व	१०२
निजरा तत्व	६५		

क्षणचंगुर मानेला ठे एथी जैनदर्शननां जीव तथा
अजीवरूप मुख्य तत्त्वोनो आ दर्शनमां अजाव ठे

१ नैयायिक दर्शन १६ तत्त्वो माने ठे. १ प्रमाण
२ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सि-
द्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद,
११ जटप, १२ वितंका, १३ हेत्वाज्ञास, १४ बळ,
१५ जाति अने १६ नियहस्थानथी. तेमां आत्यं-
तिक दुःखध्वंस एज मोक्ष एवी मान्यता ठे.
मुक्तात्माने दुःख नथी होतुं, तेम बुद्धि सुख आ-
दि नव विशेष गुणोनो पण उद्बेद थाय ठे. एथी
आत्मानी जरु दशानेज नैयायिको मोक्ष माने ठे.

३ सांख्यमत २५ तत्त्वो माने ठे ते नीचे प्र-
माणेः—१ पुरुष, २ प्रकृति, ३ महत्, ४ अहंकार,
५-९ पांच ज्ञानेंद्रिय, १०-१४ पांच कर्मेन्द्रिय,
१५ मन, १६-२० पांच तन्मात्र अने २१-२५ पांच
महाभूतो. तेउं उपरोक्त २५ तत्त्वोनां ज्ञानद्वारा

ઉત્તરમીમાંસા નામક ૨ જ્ઞેદ છે. પૂર્વ મીમાંસકો કર્મકાંડમાં અને ઉત્તરમીમાંસકો બ્રહ્મમાં એમ એકેક તત્ત્વજ માને છે.

ચાર્વાક એટલે નાસ્તિક દર્શન—તે માત્ર ૧ પૃથ્વી ૨ પાણી, ૩ તેજ, ૪ વાયુ અને ૫ આકાશ એમ ૫ પાંચ તત્ત્વોને માને છે. એના સંયોગે ચૈતન્ય-વાન્ આત્મા ઉદ્ભવી પુનઃ તેમાંજ વિલય પામે છે. એટલે મોક્ષ વગેરેની આકાંક્ષાઈ મિથ્યા ગ-ણી માત્ર પાર્થિવ વૈજ્ઞવોની ભોગિકી ક્રિયાઈમાં-જ કૃતકૃત્યતા સમજે છે.

આ પ્રમાણે ઉપર વર્ણવેલા સર્વ દર્શનોના વાસ્ત-વિકતત્ત્વોનો જૈનદર્શનનાં કથિત તત્ત્વોમાં સમા-વેશ થાય છે, તેમ સમજાવવાનું આટલું જાણ્યા પછી જાગ્યેજ ~~રહે~~ ૫

જૈનદર્શન:—ઈ મુક્ત્ય જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ, આશ્રવ, સંવર, નિર્જરા, વંધ અને મોક્ષ એ

भूमिका

पाठकों ! आपको विदित होगा कि तत्वमाला नाम का एक लेख जैनगजट से अङ्क ३, ता० १ दिसम्बर १९०४ से निकल कर गजट के अङ्क २७, ता० २ जुलाई १९०५ में समाप्त हुआ है। गजट के धर्त से पाठकों ने यह इच्छा प्रकट की कि यह लेख पुस्तकाकार छपवा दिया जाय तो तत्व भेद जानने वालों को बहुत लाभ प्राप्त होगा इसलिये इसकी १००० कापिया प्रथम आवृत्ति में सन् १९०५ में प्रकाशित हुई थी और उन से पाठकों ने लाभ उठाया तथा दूसरी आवृत्ति मुद्रित होने के लिये भारत जैन महामंडल को उद्यत किया।

इस पुस्तक में जैन धर्म के मूल सात तत्वों का वर्णन और तत्प्राथ सूत्र की अथवोध टीका के अनुसार इस रीति से दिया गया है कि हमारे अल्पज्ञानी नव युवकों को समझ में भले प्रकार आ जायगा। जिनेन्द्रमतदर्पण प्रथम भाग जो प्रथम छपवाया गया था, उसमें भी एक स्थान पर यह प्रतिज्ञा की गई थी कि सात तत्वों को दूसरे भाग में प्रकट करेंगे। इसीलिये इसका नाम जिनेन्द्रमत दर्पण द्वितीय भाग रखा गया है। दूसरी आवृत्ति में यथा आवश्यक संशोधन कर दिए गए हैं।

धातां आत्मा सोथनां ८२ प्रकारनां अशुभ कर्मो,
तथा तेने भोगववाना प्रकारनुं विवेचन करेल ठे.

५ आश्रवमां-कर्मागमननां ४२ कारणो विविध
प्रकारे वर्णव्यां ठे.

सवरमां-चाबु समय ग्री मांकी नवां कर्मोने ला-
गता अटकाववा ५७ जेदी उपाय दर्शाव्या ठे.

७ निर्जरामां-पूर्ववद्ध कर्मोना द्वय माटे १२
प्रकारनी तपश्चर्या समजावी ठे.

८ बंधमां आत्मा साथे कर्मना संबंधना चार
प्रकार तथा ते दरेकना पुनः आठआठ प्रकार-
नु वर्णन आप्युं ठे.

१० मोक्षतां मोक्ष एटवे शुं? तथा अनेक प्र-
कारना जीवोपैकी कया जीवो तेना अधिकारी ठे,
ते तथा सिद्ध-मुक्त जीवोनुं स्वरूप वर्णव्युं ठे.

वांचक समक्ष आ ग्रंथनी आठमी आवृत्त
बपाइ वहार पडे ठे, तेज तेनी उपयोगिता तथा

आशा है हमारे भाई इस पुस्तक को अधिक पढ़ पढ़ कर लाभ उठावेंगे, तथा पाठशाला के विद्यार्थियों में इसका प्रचार करेंगे और स्त्रियों तथा कन्याओं को भी पढ़ने देंगे। और यदि मेरी अल्प बुद्धि के कारण मेरे समझने में कहीं घुटियां रह गई हों तो मुझको क्षमा करते हुए सूचित करेंगे जिसमें तीक्ष्ण आवृत्ति में रहे सहे दोष भी निकाल दिए जाय ॥

ता० २०-१-११

}

जाति हितैषी
शीतलप्रसाद ब्र०

केटलाएक जाईज किंवा वहेनो मुख-
पृष्ठपरनां मात्र नाभपरथी किम्मतनो मुकावलो
करी श्रेष्ठ-नेष्टनां प्रमाणपत्रो आपी देवानी रुचि
वाळा होय ठे. तेउने एकवार आ ग्रंथ पूरेपूरो
बांची जवा अमारी नम्र ठतां मजबुत
विनंती ठे.

ठेवटे प्रस्तावना संवंधी उल्लेख पूर्ण करतां
पहेलां विनंति ठे के-जोके ग्रंथनी शुद्धि अर्थे
पूर्ण काळजी राखवामां आवी ठे, तथापि दृष्टि
दोषथी रहेल चूलोने वांचकवर्ग क्षंतव्य गणेशे.
तेमज सिद्धांत विरुद्धनी कोइ वावतोने सुधारी
वांचशे एम इल्लीशुं. अलं विस्तरेण.

लि०

बारीभा विल्डींग
पायधुनी, मुंबई.
ता. ११-१-३०

हीरजी घेलाजाई पदमशी

ना जयोजनेंद्र.

जिनेन्द्रमत दर्पण

ॐ दूसरा भाग ॐ

तत्वमाला ॥

भाई साहबान्—क्या यह बात सत्य है ! कि

“श्रोत्र श्रुतेनैव न कुडलेन, दानेन पाणिर्नतु
करुणेन । विभातिक्राया खलु सज्जनानाम्
परोपकारेण न चदनेन” ॥

अर्थात् कानों की शोभा कुडल पहनने से नहीं परन्तु
शास्त्र मुन्ने से है, हाथ की शोभा करुण से नहीं परन्तु दान
देने से है, इसी तरह सज्जनों के शरीर की शोभा चदन
लगाने से नहीं परन्तु परोपकार से है ॥

इस प्रश्न का उत्तर बुद्ध शीघ्रता से देने की आवश्यकता
नहीं । थोड़ी देर एकांत बैठ चिन्त की वृत्ति को सर्व श्राक
पणों से रोक अपने अंतरंग में चादानुवाद करके निर्णय
कीजिये और तब भले प्रकार साहस की कमर बाध निर्भय
हो खुले स्थान में आकर बहुत बड़ी ध्वनि से इस प्रश्न का
उत्तर कह दीजिये ॥

पाठक गण—है कि, नहीं, क्योंकि रिता विचार कहना
केवल कहना ही कहता है । यदि विचार पूर्वक कहना होगा
तो क्या सच्चा श्रद्धा पूर्वक कहना न होगा । यस महाशयो

षडद्रव्यनुं विशेष स्वरूप	८१
छ द्रव्यमां परिणामादि विभागनुं यंत्र.	८५
कालद्रव्यनुं विशेष स्वरूप	८७
धर्मास्तिकायनी मुख्यतानां कारणो तथा शंका समाधान	९१
अजीवना ५६० भेदनुं यंत्र	९३

३—पूण्यतत्त्वविचार.

पूण्यतत्त्वना बंध-मोक्षना भेद	९४
त्रसदशक-नामकर्मना दस प्रकार	१०३

४—पापतत्त्वविचार.

अठार प्रकारे बंधातां पापनां नाम	१०७
ज्ञानावरणीयादिक व्यागी प्रकृतिण भोगवातां पापनां नाम	१०८
स्थावर दशक-नामकर्मना दस प्रकार	११३

५—आश्रवतत्त्वविचार.

वेतालीश भेदे आश्रवतत्त्वनुं स्वरूप	१२७
द्रव्याश्रव तथा भावाश्रवनु स्वरूप	१२८
पच्चीश क्रियाओनां नाम तथा लक्षण	१२९
श क्रियाओनां गुणस्थान	१४४

में तो यही विश्वास करना है कि आप अपने मुक्त कंठ से यही कह उठेंगे "नि.सन्देह इस श्लोक का बचन बहुत ठीक है" ॥

यदि यही उत्तर आपका होगा तो हम भी सहमत हैं। पर हमें शब्द "क्यों" के उत्तरों का प्रकाश करना भी आवश्यक है। क्या यह कान कुंडल पहनने के लिये नहीं? तब फिर कुंडलों का होना निरर्थक है। नहीं नहीं कुंडल पहनाना इस कर्ण की वाह्य शोभा को दिव्यलाना है। पर जब यह कर्ण कुंडल तो पहन लें पर हमारे हितकारी कार्य की ओर अपने विषय को न लगा कर अहित में प्रवृत्तों तो क्या वह कर्ण उस सोने के दड़े के तुल्य नहीं है कि जो मल से पूरित हो अथवा उस कर्ण की प्रभा उस स्त्री के तुल्य नहीं है जो कि शृंगार रस में भीजी होने पर कुशील के कीचड़ से लित हो। पर महत्शयो! ऐसे कर्ण को दोषी ठहराने के समय कुछ हमें और भी वर्णन कर देना पड़ेगा कि हमारा कौन कार्य हितकारी और कौन अहितकारी है। पाठकगण! कृपया इन दो बातों का भी ध्यान करें—हमारी सम्मति इस विषय में यह है कि जगत में जो कार्य हमें वास्तव में सुख पहुंचाने वाला व सुख के मार्ग में ले जाने वाला है, वही हितकारी और इससे विरुद्ध अहितकारी है ॥

अब यह भी निराय कीजिये कि सुख क्या है। जहां तक बुद्धिमानों ने विचार किया है सुख उस अवस्था को कहते हैं कि जिस समय आकुलता का अभाव हो क्योंकि जहां

“पद्देलुं” प्रायश्चित्त तपना दस भेद	२१०
“वीजुं” विनयतपना सात भेद	२१२
“त्रीजुं” वैयावञ्च तपना दस भेद	२१८
“चोयु” स्वाध्याय तपना पांच भेद	२१९
“पांचपुं” ध्यान तप—आर्त्त, रौद्र, धर्म अने शुक्र ए चार भेदे	२२०
“छटुं” कायोत्सर्ग तपना वे भेद	२२५

८—बंधतत्त्वविचार.

मोदक दृष्टांते कर्मबंधना चार भेद	२२८
दृष्टांतपूर्वक आठ कर्मोनी स्वभाव	२३१
आठ कर्मोनी उत्तरप्रकृतिनी संख्या	२३८
आठ कर्मोनी उत्कृष्ट स्थितिबंध	२४०
आठ कर्मोनी जघन्य स्थितिबंध	२४३
आठ सूळकर्मनी स्थिति तथा अवाधादर्शक मंत्र	२४५
रसबंधनुं स्वरूप	२४५
प्रदेशबंधनुं स्वरूप	२४९

९—मोक्षतत्त्वविचार.

मोक्षतत्त्वनां नव भेदनां नाम प्रभेदो सहित	२५२
“सत्पदप्ररूपणा रूप” प्रथम भेदनो अर्थ	२५६

आकुलता, घमडाहट, चिन्ता, शोक, क्रोध, लोभ, माया, इत्यादि उपस्थित होंगे वहा सुख कहा से हो सक्ता है। इन्द्रियों के विषयों से माना हुआ सुख कुछ आकुलता के अभाव में जब तक उस विषय की स्थिरता है और अपना चित्त केवल उसी विषय में लौलीन है तब तक है। पश्चात् फिर अन्य विषय ग्रहण करने की आकुलता बाधित करती है। जैसे किसी को सेव खाने की इच्छा हुई अथ जय तक सेव का स्वाद जवान को न मालूम होगा तब तक आकुलता रूप दुःख है। यदि पुन्य योग से हमारी इच्छा के अनुसार सेव आ भी गया (क्योंकि जगत के प्राणी बहुत प्रकार के विषयों के पाने की कामनाएँ क्रिया करते हैं पर उनकी एक भी इच्छा फली भूत नहीं होती) और उसने भक्षण भी किया परन्तु उसके भक्षण करते २ ही दूसरी किन्ही वस्तु की इच्छा हुई कि तुरन्त दुःख पैदा हो गया। अब जबतक यह इच्छा पूर्ण न होय तब तक यह दुःखी है। इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों का सुख को मानना ऐसा है कि जैसे काह अनेक रोगों से पीडित होय और उसका एक रोग शात हुआ हो इतने ही में वह रोगी उस के शात होने से अपने को सुखी मान लवे। लकिन यदि ठीक ठीक चिन्तारियेगा तो यही कहना होगा कि जब तक वह रोगी सर्व रोगों, से मुक्त न हो जाय कदापि सुखी नहीं है। इसी तरह सम्यगी प्राणियों के अनेक असत्य इच्छाओं के रोग लगे हुए हैं। जब एक इच्छा रूपी रोग किन्ही शुभ कर्म बश में शात होता है तो यह प्राणी अपने को सुखी मान लेता



है पर वास्तव में सुखी वही होगा जिस का सर्व इच्छाओं के रोगों की शांति हो जायगी। इसी लिये हमको वह यत्न करना योग्य है जिस में हमें विषयों की इच्छाएं बाधित न करें। वस यही सुख मार्ग पाने का सीधा उपाय है। पाठकों ने भले प्रकार जैन शास्त्रों से निर्णय किया होगा कि बड़े बड़े महान् पुरुष जैसे तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदिक पूर्ण पुण्य योग से इच्छित विषय प्राप्त करने का बल रखते थे तथापि इच्छाओं के रोगों से उनकी मुक्ति उस बल से नहीं हुई। उनको इन रोगों से छूटने के वास्ते परिग्रह का भाग छोड़ बन में जा नग्न दिगम्बर हो तप करना पड़ा। अपने चित्त को अपने आप में बिठाना पड़ा। तब उनके पूर्ण यत्न से वे इच्छाओं के रोगों से मुक्त हुए और तब तीन लोक की वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सर्व प्रकार से सुखी होते भए। वस वास्तव में हम प्राणियों को भी वही मार्ग धारण करना उचित है अर्थात् जितेन्द्रिय हो अपने आत्मद्रव्य को जानना उचित है। अपने आत्मद्रव्य रूपी फटिक मणि में से कर्म रूपी मैल को निकाल डालना उचित है और जब ऐसा हम करेंगे तब ही हमारे उस फटिक मणि में तीन लोक की वस्तुओं के सर्वगुण पर्य्याय झलकेंगी और किसी चीज के विषय जानने की इच्छा न पैदा होगी।

पूर्ण यत्न सुखी होने का तो मुनिपद ग्रहण से है पर जब तक ऐसा न हो सके तब तक गृहस्थी में यथाशक्ति यत्न करता रहे—वस अपने कानों को ऐसी ध्वनि सुनाना कि जो

(२)

एगविहडुविहतिविहा,
चउद्विहा पंचठद्विहा जीवा ॥
चेयणतसश्यरेहिं,
वेयगईकरणकाएहिं ॥३॥
एगिंदिय सुहुमियरा,
सन्नियरपाणिंदिआ य सवि-
तिचउ ॥ अपजत्ता पज्जत्ता,
कमेण चउदस जियठाणा ४
नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तथा ॥

चित्त को प्रमाद से छुटाकर उग्रम भ, जुआ आदि मात व्यसनों से छुटाकर धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चारों पुरुष धा के साधन में, क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता से बचाकर विभेक के मार्ग में, स्वार्थीपने की आदत से बचाकर कुटुम्ब रक्षण, जाति या धर्म रक्षण, देश हितरक्षण व जगत सुख-दायक काय्या की आर फेर दवे यही हमारा हित है। सो इसी लिये न्यायकार कहते हैं कि हे भाइयों कर्णों की शोभा कु डल पहने से नहीं किन्तु हितकारी वार्ता के सुनने से है—इसी तरह वह हाथ जोकि निर्ममव हो सर्व त्याग कर के अथवा जा परोपकार में अपने हाथ से धन का दान करे वही हाथ शोभनीक है। इसी तरह मज्जन और माधु पुरुषों के शरीर निश्चय से चन्दन लगान से शोभनीक नहीं होत किन्तु यदि वह अपने शरीर से परोपकार करें तर्हि शोभनीक हैं ॥

भाइया ! जो आप मि० गोयले, दादा भाई नीरोजी, मि० ताता, मि० मुण्डनाथ बनर्जी मि० मदानमोहन मातायाय, मि० राय्यन् अहमद इत्यादि परोपकारियों की प्रशंसा करते हैं वह उनका परोपकारता में अपने मन का लगाने ही के कारण करते हैं। कुछ सुन्दर पगडा और कपडे पहनने से नहीं। इसी तरह हमारी जन जाति के भद्र पुरुषों (जेटिलमों) की शोभा उसी समय है जब व अपने आप को जाति व धर्म की उन्नति में लगा दवे। कुछ सुन्दर कपडे पहनने पगडी बाधने से नहीं, कुछ पतलून कोट पहना से नहीं कुछ घृथा प्रलाप करने से नहीं ॥

॥ इति जीवतत्त्वम् ॥

धम्माऽधम्माऽगासा,

तियतियत्तेया तहेव अद्वा य
खंधा देस पएसा,

परमाणु अजीव चउदसहा ऽ

धम्माऽधम्मा पुग्गल,

नह कालो पंचहुंति अज्जीवा ॥

चत्तणसहावो धम्मो,

थिरसंगाणो अहम्मो अ ॥ ए ॥

अवगाहो आगासं,

अध्याय द्वादश

मन्त्रशास्त्र

भाइयों ! श्रीमान् उमान्वामी आचार्य* ने मोक्ष मार्ग का स्वल्प अल्प रचिन श्री नन्दार्थ मूत्र जो मैं जैसा वर्णन किया है वही मार्ग अनादि काल से चला आया है। मोक्ष मार्ग वही मार्ग है जो कि जीव को दुःखों से बचाकर ऐसी दशा में कर दे कि जिस दशा में रह कर यह पूर्ण आनन्द अतन्त्र काल तक भोगता रहे। पूर्ण आनन्द क्या वस्तु है और क्यों इसके प्राप्त करने की आवश्यकता है यह वर्णन पहले किया जा चुका है तथापि यहाँ पर भी उसकी किञ्चन परिभाषा दी जाती है ॥

पूर्ण आनन्द वह स्वाधीन निराकुल आनन्द है जोकि अपने जीव का निज स्वभाव है। और इसके प्राप्त की आवश्यकता इस प्रयोजन से है कि यह जीव उस दशा में पूर्ण ज्ञानी अर्थान् सर्वज्ञ हो जाता है और यह नियम है कि सुख ज्ञान पूर्वक है। जिस व्यक्ति को एक वस्तु का हाल जब तक नहीं मालूम था वह दुःखी था जब उसको वह हाल मालूम हो गया वह सुखी हो गया। इसी तरह पूर्ण ज्ञानी पूर्ण सुखी है। क्योंकि ऐसे जीव के लिये कोई पदार्थ श्रेय नहीं रहा कि जिसके जानने की आकुलता हो। आकुलता के अभाव से वह पूर्ण ज्ञानी सदा सुखी है—यस इसी पूर्ण ज्ञानी होने का जो उपाय है वही मोक्ष मार्ग है।

* यह आचार्य सन्वत् १०६ में हुए हैं।

(६)

आवक्षिया इग मुहुत्तम्मि १९
समयाऽवलो मुहुत्ता,
दीहा परका य मास वरिसा य
न्नणिञ्चो पक्षिञ्चा सागर,
नस्सप्पिणी सप्पिणी कालो॥
परिणामि जीव मुत्तं,
सपएसा एग खित्त किरिञ्चा य
णिच्चं कारण कत्ता,
सव्वगय इयरअप्पवेसे ॥१४॥
॥ इत्यजीवतत्वम् ॥

यह मार्ग तीन भेद रूप में है अर्थात् सम्यग्दर्शा, सत्य ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य अर्थात् अच्छी तरह विश्वास करना, अच्छी तरह जानना और अच्छी तरह आचरण करना—किनको ? तत्वों को । तत्व क्या वस्तु है ? इस शब्द का अर्थ सत्यता है और यहाँ पर भी तत्त्व उसी को कहते हैं जो सत्य सत्य वस्तु मात्र मार्ग में प्रयोजन भूत है अर्थात् वह वस्तु जिनके कि जाने बिना मोक्ष मार्ग नहीं ग्रहण किया जा सकता ॥

तत्त्व सात—७ हैं —

जीव, अजीव, आश्रय, धर्म, सत्त्व, निर्जरा और मोक्ष ॥

अध्याय तीसरा

जीव तत्त्व

महाशयो ! जीव से निश्चय करके मतलब उस चीज से है जो कि जीती थी अर्थात् चैतन्य रूप में थी, जागृत है याने इस प्रतमान समय में भी जी रही है और जीवेगी याने आगे भी जीती रहेगी । प्रयोजन यह है कि गाँव जो एक गुण है वह जीव ही के पास है और वहाँ नहीं । जिस चीज में जीव नहीं होता उसको जड़ कहते हैं जड़ में समझने व पहचानने की ताकत नहीं । यह ताकत एक जीव ही के पास है ॥

यह बात निर्विवाद सिद्ध है, हर एक मत व हर एक बुद्धिमान अच्छी तरह समझता है कि जीव जिसको रूढ़ कहते हैं उसका काम "जानने" का है । जिस वक्त यह शरीर

सुस्सर-आइज्ज-जसं,
 तसाइदसगं इमं होइ ॥ १७ ॥
 ॥ इति पुण्यतत्वम् ॥
 नाणंतराय दसगं,
 नव बीए नीअसायमिठत्तं ॥
 आवरदस नरयतिगं,
 कसायपणवीस तिरियडुगं १७
 इग-बि-ति-चउ-जाईअो,
 कुरकगइ नवघाय हुंति पावस्स
 अपसत्थं वणचऊ,

में रहता है यह अपने शरीर के द्वारा से किसी चीज को छूकर किसी का सवाद लेकर, किसी को सुंघ कर, किसी को देख कर और किसी को सुन कर उन का हाल मालूम करता है। जिस वक्त यह शरीर में नहीं रहता, शरीर अकेला किसी चीज का हाल जानने को असमर्थ हो जाता याने नहीं जान सकता है ॥

अब यहां पर कोई कोई मतवाले यह शंका करने हैं कि जीव कोई जुदी चीज़ नहीं है और वे कहते हैं जैसा कि इस छंद में वर्णित है ॥

चौपाई

भूजल अग्नि पवन नभ मेल ।

पांचो भए चेतना खेल ॥

त्यो गुड़ आदिक तैं मद होय ।

मद ज्यो चेतन थिर नहि कोय ॥

याने ज़मीन, पानी, आग, हवा और आकाश के मिलने से चेतना याने जीव पैदा हो जाता है जैसे गुड़ वगैरह चीजों के मिलने से मदिरा याने शराब बन जाती है जिसका काम नशा है ॥

इसके जवाब में जीव मानने वाले यह दोहा कहते हैं—

दोहा

पांचों जड़ ये आप हैं जड़ ते जड़ ही होय ।

गुड़ आदिक तैं मद भयो, चेतन नाही सोय ॥

काइअ अहिगणीया,
 पाउसिया पारितावणीकिरिया
 पाणाइवाइ रंनिअ,
 परिगहिया मायवत्तीआ ११
 मिन्नादंसणवत्ती,
 अपच्चरकाणी य दिठी पुठिअ
 पादुच्चिअ सामंतो,-
 वणीअ नेसत्थि साहत्थी १३
 आणवणि विअरणिआ,
 अण्णोगा अणवकंखपच्च-

मृजल पात्रर पान नभ, जहा रसाइ जान ।

पर्यो गहि चेतो ऊपजे, यह मिथ्या सरधान ॥

याने जमीन प्रगेरह जिन पात्रों र मिलने से बहते हो कि जीव पदा हाता ह' सो ये पात्रों हा जड है जड चीज स जड पदा होगी चतन नहीं गुड प्रगेरह के मितान से मटिरा रूपी पर जड चाज नी पैदाइश हुइ । उस मटिरा म अपने आप नशा कुट्ट नहीं ह । जय वह पा जाती ह तो पीन घाले को नशा मालूम भी हाता है आर नहीं भा मालूम हाता है सो इस तरह स ता रगत में यह कायदा ही ह कि कई जड चीजों के मिलन से एर दूसर प्रकार की जड चीज पैदा हो जाती ह जिसका अमर कुट्ट न कुट्ट होता ही है जैसे पानी, माटा आर रवा अग्नि र जगिय स मिल कर हलवा हो जाता है जो कि अपना एक खास असर रखता है । आर दक्खिय रसोइ म मिट्टी पानी आग, हवा और आकाश पाचा चाजें हाता ह पर उनस सिवाय जड चीजों के कोई चेतन चीज पैदा नहीं हा सकता है—

यह बात ता साय स (विज्ञान) क जरिय स भा प्रमाणित है कि जिन चीजों में पुद्गल (Matter) है उनक मिलन क अलग करने स पुद्गल (Matter) ही हो जायगा । पुद्गल म तरह तरह की ताकत माजूद ह । एलेक्टिसिटी (विजुला) आदिक सय पुद्गल ही की पर्याय ह । इनमें कुट्ट भी चेतना नहीं । जय का काइ मरत नहीं हाता । पुद्गल की मूरत है । मृत्तिक स अमूर्तिक घन्तु नहीं था सकता ह । पुद्गल का छाटा स छाटा टुकड़ा (जिनका आर टुकड़ा नहीं

कायगुत्ति तहेव य ॥ १६ ॥

खुहा पिवासा सी-उएहं,

दंसा चेला रइ-बिअ्रो ॥

चरिअ्रा निसिहिया सिज्जा,

अक्कोस वह जायणा ॥१७॥

अलाअ-रोग-तणफासा,

मल-सक्कार-परीसहा ॥

पन्ना अन्नाण सम्मत्तं,

इअ्र बावीस परीसहा ॥१८॥

खंती मइव अज्जव,

हो सकता) भी मूर्तिक होगा । यदि हम यह मानें कि मिट्टी, पानी, आग, हवा के मिलने से जीव होता है और एक एक का इनमें से एक एक ही छोटे से छोटा टुकड़ा आपस में मिल कर जीव हो जाता है । तब भी इन पांच टुकड़ों से बनी चीज़ मूर्तिक ही होनी चाहिये, अमूर्तिक नहीं । मूर्तिक की तौल भी होती है किन्तु इस अमूर्तिक वस्तु जीव में कोई तौल नहीं—एक जीवधारी का शरीर उसके मरने समय तौला जाय और फिर जीव न रहै तब उसी शरीर को तौलो वशतें कि उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाला एक भी परमाणु (जरा) (Matter) पुद्गल का अलग न हा । तौ दानों की तौल बराबर होगी ।

यह जीव अनादिकाल का है कभी इसका नाश नहीं होता ॥

चौपाई ॥

बालक मुख मैथुन को लेय ।
 दाघे अचे दूध पिवेय ॥
 जो अनादि को जीव न होय ।
 सीख विना क्यों जाने सोय ॥
 मर के भूत होत जे जीव ।
 पिछली बातें कहै सदीव ॥
 सिरचढ़ि बाले निज घर आय ।
 ताते हस अमर ठहराय ॥

भावार्थ—छोटा लड़का जन्मतेही अपनी माता को पहचान कर दूध पीने लगता है । शरीर में दुख मालूम होते ही रो

ज्ञावेऽप्रवा पयत्तेणं ॥ ३१ ॥
 सामाइ अत्थ पढमं,
 वेऽप्रोवठावणं ज्ञवे बीऽयं ॥
 परिहारविसुऽधीऽयं,
 सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥
 ततो अ अहखायं,
 खायं सबंमि जीवलोगंमि ॥
 जं चरिऊण सुविहिऽया,
 वच्चंति अयरासरं ठाणं ॥ ३३ ॥
 ॥ इति संवरतत्वम् ॥

देता है, दूसरे जो जीव मर कर भूत आदिक नीच देव होते हैं वे सभी किसी के सिर चढ़ के पिठुली चारों फहते हैं इत्यादि दृष्टान्त इस बात के प्रमाण हैं कि, जीव अनानि, अनन्त अत्रिनाशा, पुद्गल से भिन्न कोई अमूर्तिक वस्तु है। मूर्तिक पुद्गल से इसका निश्चय से सम्बन्ध नहीं है—इस जीवका लक्षण 'जानना' 'देखना' है। लेकिन स्वसारा जीवों के ज्ञान दर्शन स्वभाव का प्रगटपता बहुत कम है इस सम्मारी जाधों का जानपना इन पाँच इंद्रिय तथा मनः द्वारा होता है। जन्मे का दृष्टि ठाक न हो तो उसको देखने के लिये चष्मा लगाने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार हमारे जानपना का स्वभाव जब तक निर्मल नहीं तब तक जानपने के लिये सहायता की आवश्यकता होती है—यहा पर यह शक्य होगी कि जब जीव वस्तु का स्वभाव जानना था है तब और सहायताआ की क्या आवश्यकता है—इसका समाधान इस प्रकार है कि स्वसारा जीवों के स्वभाव अनानि शक्य से किसी प्रकार के मल से पुरित है जा कि इनका अपने स्वाभाविक काय के ज्ञान में राधा करते हैं। ये मल क्या हैं इसका वर्णन अजीव और आश्रव तत्व में किया जायगा।

यहा पर केवत जीव तत्वही वर्णन है।

इसी जीव तत्व के विषय में एक कवित्वन यह कविच है।

सवैया

जीव सदा उपयोग मई, निरमूर्ति भावनि का कर्ता है।
देह प्रदान करो भुगता मत जान तसे शिव का भक्ता है ॥

जाणं नुस्सग्गो वि अ,
अप्पितरअो तवो होई ॥३६॥

॥ इति निर्जरातत्वम् ॥

पयइ सहावो वुत्तो,

ठिइ कालावहारणं ॥

अणुजागो रसो णेअो,

पएसो दलसंचओ ॥ ३७ ॥

पम-पमिहार-सि-मद्य-

हम-चित्त-कुलाल-जंमगारीणं

जह एएसिं जावा,

ऊरव चाल सुभाव विराजत नौ अधिकारति को धरता है ।
सो सब भेद बखान करूँ सरधान करो भूम को हरता है ॥१॥

सवैया ३१

इन्द्रो पांच बल तीन श्वास आव दस प्राण मूल चार
इन्द्रो बल स्वास आव मानिये । पूरव जीवै था अत्रजावै आगे
जोच होगा पर्ई प्राण सेतो विवहार जीव जानिये ॥ सुख सत्ता
बोध और चेतन निहचं प्राण, शाश्वता सुभाव तीनकाल में
बखानिये । विवहार निहचं स्वरूप जान सरधान ऐसे जीव
वस्तु लखै सां सुखी पिछानिये ॥

भावार्थ—जीव के मुख्य करके ६ विशेषण है (१) सदा जीव है अर्थात् तीनों काल में जीता है (२) उपयांगमई याने ज्ञान दर्शन का धारो है (३) अमूरत है पुदगल की ऐसी कोई मूरत (material figure) नहीं है (४) कर्त्ता है याने व्यवहार से कर्मों का कर्त्ता है निश्चय से अपने ही भावो का कर्त्ता है (५) देह प्रमाण याने जिस देह में जाता है उसी देह के प्रमाण सिक्कुडता व फैल जाता है (६) भोक्ता है याने व्यवहार से अपने ही क्रिये हुए कर्मों का फल आप भोगता है । निश्चय से अपने स्वभाव को भोगता है (७) संसारी है अर्थात् संसार में घूमने वाला है (८) सिद्ध है अर्थात् संसार से रहित शिवरूप है (९) ऊर्ध्व स्वभाव धारी है याने अग्नि की लौ के समान ऊंचा चलने का है स्वभाव जिस का । व्यवहार में जीव वह है जिसके कम से कम ४ प्राण और ज्यादा से ज्यादा १० प्राण होते हैं ।

मोहणिए वीस नामगोएसु ॥

तितीसं अयराइं,

आजठिइबंध उक्कोसा ॥४१॥

बारसमुहुत्त जहन्ना,

वेयणिए अठ नामगोएसु ॥

सेसाणंतमुहुत्तं,

एयं बंधठिईमाणं ॥ ४२ ॥

॥ इति बंधतत्त्वम् ॥

संतपयपरूवणया,

द्वपमाणं च खित्त फुसणाय ॥

एक इन्दी वाल जीवों क ४ प्राण याने मर्ण इन्दी शरीर का बल, आयु और शान्तिप्राप्त होत है ॥

दो इन्दी वाल जीवों क ६ प्राण याने फल कह दृष्टो मे रसा इन्दी और यवन बल ज्यादा हाता है ॥

तीन इन्दी वाल जीवों क ७ प्राण याने एक घ्राण (नाक) इन्दी ज्यादा होती है ।

चार इन्दी वाल जीवों के ८ प्राण याने एक चक्षु (आंख) इन्दी ज्यादा हाता है ।

पाच इन्दी वाले जीव दो तरह क हात है एक मन वाले दूसर मन बिना—

मन रहित पच इन्दी जीवों क ६ प्राण याने एक कण इन्दी ज्यादा हाता है । मन सहित पच इन्दी जीवों क १० प्राण याने एक मन बल ज्यादा हाता है ।

और निश्चय कर जाय यह है जिसके सदा प्राण दशन सुग पाया जाय -

यहां पर व्यवहार और निश्चय दो शब्द एक साथ प्रयाजय यह है कि निश्चय उस कहते है जा कि एक शान्त के अमली हाल का यह । व्यवहार उस कहते है जा कि अमली हाल का न यह कर, किन्ती और चीजों क समय मे जो तरह २ वा हालते हैं उतना यह ॥

जीव का जो जागा स्थिति है उस का स्थिति क पात्र नदर अधान मतिज्ञान धृतिज्ञान अविज्ञान मन पर्यय पात्र, और केवल शान्त । इत मे न करत तात त्रिभुव समय तीव्र के स्थिति मे हाता है उस समय यह जाय स्थिति बिना किसी

नरगड्-पण्डि-तस-न्नव,-
 सन्नि-अहरकाय-खड्असम्मत्ते
 मुक्को णाहार-केवल,-
 दंसण-नाणे न सेसेसु ॥४६॥
 दव्वपमाणे सिध्धा,-
 णं जीव दव्वाणि हुंति णंताणि ॥
 लोगस्स असंखिज्जे,
 ज्ञागे इक्को य सब्बेवि ॥ ४७ ॥
 फुसणा अहिअ्रा कालो,
 इग सिद्ध पमुच्च साइअ्रोणंतो ॥

और वस्तु की मदद के तीनालाक की सब चीजों को जान लेता है। अवधि ज्ञान और मन पर्यय जान के होने पर इस जीव के जानने की शक्ति म थाडो मदद और चीजों की आवश्यकता होती है इसी लिये इन दो ज्ञानों का कुछ प्रत्यक्ष भी कहते हैं।

किन्तु मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान यह दो ज्ञान बिना और चीजों को मदद के बिलकुल नहीं होते। यह दो ज्ञान एकेन्द्री जीव से लेकर मन सहित पंचेन्द्री जीव तक सब जीवों के कमती बढ़ती पाये जाते हैं ॥

अवधि ज्ञान जन्मते ही देवनारकी और तीर्थकरों के पाया जाता है लेकिन औरों को इसके पाने के लिये आत्म-ध्यान करना होता है। मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान यह दो ज्ञान बिलकुल आत्म-ध्यान करने ही से मनुष्य जन्मधारी जीव ही को होते हैं—एक जीव के एक वक्त में कमती से कमता एक और ज्यादा से ज्यादा ४ ज्ञान हाते हैं—यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान ही होगा क्योंकि जिस समय केवलज्ञान होता है उस समय पूर्ण ज्ञान हासिल हो जाता है फिर और ४ प्रकार के ज्ञान का आवश्यकता नहीं हाती है। दो हांगे तो मति और श्रुति हांगे तीन हांगे तो मति श्रुति और अवधि या मन पर्यय। और चार हांगे तो मति, श्रुति, अवधि और मन पर्यय हांगे।

हमारे में मति और श्रुति यह दो ज्ञान ही मौजूद है और यह दोनों ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन के आधीन हैं क्योंकि हमारे आत्मा का इतना ज्ञान मन्द है कि यह बिना इनकी

ज।वाइ नवपयत्थे,
 जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं
 चावेण सहहंतो,
 अयाणमाणेवि सम्मत्तं ।५१।
 सवाइ जिणेसरत्ता,-
 सिअ्राइ वयणाइ नन्नहा हुंति॥
 इअ बुद्धी जस्स मणे,
 सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥५२॥
 अंतोमुहुत्तंमित्तं,-
 पि फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं

सहायता के नहा दृग् सक्तता जस कि कमता दृश्यन प्राल
 को चश्मे की सहायता के बिना ठाक नहा मालम पडता
 और जस चश्मे मे यदि कुछ दाप हा, जाय ता न सके
 घ कम देख सके व और का और दृष्टे इत्ना तरह था
 पाच इन्द्रिय व मन विगडे हों व फिसा में दोष हाय ता
 उनके द्वारा भा जा जानता हागा वह कमतो बढतो और
 का और व नहीं जानता हागा । यही कारण ह कि पृष्ठ
 अस्थि में इन्द्रिया की शिथिलता हाणे पर जानने में भो
 कमा हा जाता है और इन्द्रिय और मन के ठीक रहने से
 जानपा भा ठीक हाता है जसे जितना तज चश्मा हाता
 उतना तज दृश्यलाइ देगा जितना मद हागा उतन ही
 मद प्रगट हागा—अर प्रश्न येवल इतना हा है कि एसे
 जायी का ज्ञान इतना क्या म न हो रहा है उसमे लिये
 उपर लिये अनुसार फिर भी कहना हाता है कि एर
 प्रकार का मल ह जा अनादिमाल स हमार आत्मज्याति का
 प्रगट नहा होन दता—

चौथा अयाव्य

अजावतत्व

'अजीव' उसे कहते ह जो जीव नहीं अथात् जिस वस्तु
 में अपने आप चेतनता या देखने जानने की शक्ति नहीं ।
 अजीव पाच प्रकार के जनमत में कह हे, पुद्गल, धर्म, अधर्म,
 आकाश आर काल ॥

सिद्धा (य सिद्धिणिकाय) ॥५५॥

जिणसिद्धा अरिहंता,

अजिणसिद्धा य पुंमरिअपमु-

हा ॥ गणहारि तित्थसिद्धा,

अतित्थसिद्धा य मरुदेवी ॥५६॥

गिहिलिङ्गसिद्ध ज्ञरहो,

वलकलचीरी य अन्नलिङ्गमि ।

साहू सलिङ्गसिद्धा,

थीसिद्धा चंदणापमुहा ॥५७॥

पुंसिद्धा गोयमाई,

यह लोक नव जगह छः द्रव्यों में भरा हुआ है। वह छः द्रव्य ऊपर कहे हुए पांच तरह के अजीव और एक जीव द्रव्य हैं ॥

इस पांच अजीवों में धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो विलकुल अमूर्तिक हैं। सिर्फ पुद्गल ही मूर्तिक है ॥

इस जगत में जितनी कस्तुरिणी इन्द्री गोचर हो रही हैं सब पुद्गल ही हैं ॥

हमारा बहुत बड़ा सम्बन्ध पुद्गल से रहता है इस कारण पहले पुद्गल नामा अजीव ही के भेदों का वर्णन प्रगट किया जाता है ॥

पुद्गल छः प्रकार के होते हैं (१) सूक्ष्म सूक्ष्म (२) सूक्ष्म (३) सूक्ष्म स्थूल (४) स्थूल सूक्ष्म (५) स्थूल (६) स्थूल स्थूल ॥ सूक्ष्मसूक्ष्म पुद्गल का एक परमाणु होता है याने इतना छोटा हिस्सा कि जिसका फिर भाग न हो सके ॥

सूक्ष्म—कर्म वर्गणा के पुद्गल है जिन से बंधा हुआ यह आत्मा संसार चक्र में घूमा करता है और जिन के छूट जाने से वह जीव मुक्त कहलाता है ॥

सूक्ष्म-स्थूल वह चाञ्चल है जोकि देखने में सूक्ष्म है याने चर्म नेत्रों से नहीं दिखलाई पड़ती परन्तु अपने कार्य में बहुत स्थूल है याने काम उसका बहुत बड़ा मालूम होता है जैसे शब्द (आवाज़) खुशबू जोकि देखने में नहीं आते परन्तु काम इनका साक्षात् प्रगट है—

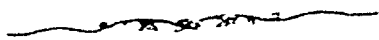
स्थूल-सूक्ष्म वह पुद्गल है जो देखने में बहुत मालूम हो पर सूक्ष्म इतना कि आप उसे हाथ से पकड़ नहीं सकते जैसे चांदनी, धूप, छाया आदिक ॥

श्रीवीतगागाय नमः

॥ अथ ॥

श्रीबालावबोधसहितं नवतत्वप्रकरणं

॥ प्रारब्धते ॥



श्रीवीरजिनं नत्वा, मत्वा तद्विष्टनावचक्रं च ॥
नवतत्त्वार्थं विवरणं, कुर्वेऽहं बालबोधाय ॥ १ ॥
प्रथम ग्रंथकार श्रीधर्मसूरि महाराज वस्तुसंकी-
र्तनरूप मंगलद्वारा नव तत्त्वनां नाम कहे ठे.

आर्यावृत्तं.

जीवाऽजीवा पुष्पं, पावाऽसव संवरो
य निज्जरणंणा ॥ बंधो मुक्को य तहा,
नव तत्ता हुंति नायवा ॥ १ ॥

स्थूल यह पुद्गल है जो यहनेवाली चीज है याने जिसके टुकड़े कर देने में फिर यह बिना किसी चीज की सहायता के घेमे ही मिलजावे जैसे पानी, दूध, तेल आदिक ॥

स्थूल स्थूल वह पुद्गल हैं जिनका टुकड़ा किये जाने से बिना दूसरी चीज का मदद के फिर न जुड़ सकें जैसे पत्थर मिट्टी लकड़ी आदिक ॥

इन छु भेदों में हमारे जीव के साथ विशेष कर सम्बन्ध इस सूक्ष्म जाति के पुद्गलों से है जोकि हमारे जीव को स्वभाव जनित निजानन्द प्राप्त करने में बाधा डालते हैं इसी लिये हमें ऐसे कर्म वगणा जाति के पुद्गलोंका विशेष हाल कहना उचित है ॥

कम्म वगणा के पुद्गलों याने कर्मों का 'सम्बन्ध' हमारे जीव से अनादि काल से है और यही एक प्रकार का मल है जोकि जीव को अपने स्वाभाविक कार्य के करने में बाधा डालता है और जब तक यह कर्मरूपी मल हमारी आत्मा से मिला है तब तक यह आत्मा स्वाधीन रह कर अपने अपने ज्ञान दर्शन सुग वीय स्वभाव को प्रकाश नहीं आप कर सकता । यह कर्मरूपी मल हमेशा से इस जीव के साथ लगा है कोई नया नहीं परन्तु इसके निज स्वभाव से भिन्न है । जैसे घास से निकला हुआ धातु मिट्टी आदि से मिली हुई निकलना है और मिट्टी के अलग करने से वह शुद्ध साफ हो जाती है, मिट्टी का स्वभाव उस धातु के स्वभाव से भिन्न है । उसी तरह आत्मा से अनादि काल का मिला हुआ यह भिन्न

तैश्चै विपरीत जे चेतना रहित जन्म स्वभाव-
 वालो होय, ते वीजुं अजीवतत्त्व कहेवाय; जेणे
 करी शुभ कर्मनां पुज्जलोनो संचय थवाश्चै
 सुखनो अनुभव थाय ठे, ते त्रीजुं (पुणं के०)
 पुण्यं, एतले पुण्यतत्त्व कहेवाय; ते पुण्यना वे
 जेद ठे. एक द्रव्यपुण्य, अने वीजुं ज्ञानपुण्य,
 तेमां जीवने सुख जोगववाभां कारणरूप जे
 शुभ कर्म, ते द्रव्यपुण्य अने शुभकर्मनी उत्प-
 त्तिमां कारणरूप जे शुभ आत्मपरिणाम, ते
 ज्ञानपुण्य कहेवाय. अथवा पुण्यानुबंधी पुण्य
 अने पापानुबंधी पुण्य, एम पण वे जेद थाय,
 तेमां पुण्य जोगवतां नवुं पुण्य वंधाय, ते पुण्या-
 नुबंधी पुण्य अने पुण्य जोगवतां नवुं पाप
 वंधाय, ते पापानुबंधी पुण्य कहेवाय. तैश्चै
 विपरीत जेणे करी अशुभ कर्मनां पुज्जलोनो
 संचय थवाश्चै दुःखनो अनुभव थाय ठे, ते

स्वभावधारी कर्मरूपी मल प्रयत्न करने से दूर होता है और यह आत्मा शुद्ध हो सकता है ॥

यह कर्म वर्गणा के परमाणु जोकि संसारी जीवों को ग्रसे रहते हैं इतने सूक्ष्म हैं कि अनंतानंत इस जीव के साथ रहते हुए भी इन चर्मनेत्रों से दिखलाई नहीं पड़ते इसके लिये हमें आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि वायुकाय के पुद्गल इतने भारी होने पर भी कि बड़े बड़े पहाड़ के शिखरों को अपने धक्के से गिरा दें दिखलाई नहीं पड़ते इसी प्रकार बहुत-सी ऐसी चीजें तलाश करने से मिलेंगी जोकि नहीं दिखलाई पड़तीं । यह कर्म वर्गणा कुछ एकही रूप से अनादि काल से नहीं आ रही है, हर एक समय (जोकि काल का सब से छोटा हिस्सा है) में पुराने कर्म के पुद्गल, भड़ते जाते हैं और नये मिलते जाते हैं ।

पुराने कर्म आत्मा के साथ रहने से जिस समय वे रस देने को सन्मुख होते हैं अज्ञानी आत्मा को उस तरह के कर्म के फल के भोगने के लिये उद्यत होना होता है ज्ञानवान आत्मा कर्म का फल कमती बढ़ती भी भोग सकता है यदि वह भोगने वाला आत्मा समभाव से याने यह समझ कर कि यह मेरे ही किये हुए कर्म का फल है उस दशा को सह ले और अपने भाव विलकुल कलुषित, च हर्षित न करे तो उस कर्म फल भोगने की अवस्था में उसके नए कर्मों का बन्धन नहीं होगा किन्तु यदि कुछ भी हर्ष विपाद होगा तो नये कर्मों का अवश्य बंधन होगा जैसे किसी जीव के कर्म उदय के वंश से कोई रोग उत्पन्न होने के कारण बन गए । उस समय यदि

कर्मोनुं रोकावुं, ते द्रव्य संवर, अने आवतां
 कर्मोने रोकावामां कारणरूप जे आत्मानो शुद्ध
 परिणाम, ते ज्ञान संवर, एम वे जेदवाळुं संवर-
 तत्व कहेवाय; (य के०) च, एटले अने जेणे
 करी आत्मप्रदेशमांथ्री देशथकी कर्म जूदां थाय
 ठे, अथवा पूर्वे करेलां कर्मोनी जे दाय थाय ठे,
 एटले तप प्रमुखे करी कर्मनुं पत्रावयुं थाय ठे,
 ते सातमुं (निर्जराणा के०) निर्जराणा, एटले
 निर्जरातत्व कहेवाय; तेमां कर्मोनी देशथी दाय
 थाय, ते द्रव्यनिर्जरा अने ते दाय थवामां का-
 रणरूप जीवनो जे विशुद्ध परिणाम, ते ज्ञान-
 निर्जरा, अथवा समकीती जीवनी सकाम नि-
 र्जरा अने मिथ्यात्वीनी अकाम निर्जरा, एम
 पण वे जेदे निर्जरा कहेवाय. जे नवां कर्मोनुं
 ग्रहण करीने तेनी साथे जीवनुं बंधन थवुं,
 क्षीरनीरनी पेठे मली जवुं थाय, ते आवमुं

यह रोगीन घबडा कर,समभाव रखवे ऐसा समझ कर कि यह राग की उत्पत्ति मेरे ही बाधे हुए पूर्व कर्म का फल है, तो उसके उस जाति के नए कर्मों का बन्धन न होगा और यदि इसक प्रतिकूल घबडाएगा, दुखी होगा, तो अवश्य उसके उस समय की भावों में तीव्रता व मदता के अनुसार उसी जाति के कर्म परमाणुओं का बधन होगा जोकि आगामी फिर कभी फल देने के समुप्य होंगे। यह कर्मों का चक्रर उस सृत घतार के चक्रर के समान है जोकि एक तरफ से खुलता जाय और दूसरी तरफ से बधता जाय। कर्म चक्रर का झालने वाला बाधने वाला एक जीव ही है। यदि यह प्रयत्न करे तो बधे कर्म बिना रस दिये ही भड जाय और नए कर्म बधे ही तहां ॥

यहां पर इतना कह देना भी अनुचित न होगा कि यह ससारी जीव विलकुल कर्मों के बश नहीं है यदि यह प्रयत्न करे तो पहिले के कर्मों को अपने फल देने के पहिले ही दूर कर सकता है तथा उनके जोर घटा सकता है और उनका जोर बढा भी सकता है। इसका बर्णन "निजरा" तत्र में किया जायगा ॥

हम यहां पर अपने उन भाइयों का ध्यान इस विषय पर आकषण करने ह जोकि कर्मों के आधीन अपने को मान कर निरुधमी रहते ह। जैन मत का कभी यह सिद्धात नहीं ह कि हम कर्मों ही के आधीन हैं। जैन मत के सिद्धात को जैसा ऊपर बखन किया गया ह जानने वाले सदा उद्यम के घोटें पर सवार रह कर कर्मों को अपने ही बश में समझ कर अपनी

समजी क्षेत्रो. ते चकारथी ए नव तत्त्वने विपे
सर्व पदार्थोनो समावेश थाय ठे, अर्थात् एथी
वधारे तत्त्व कोइ नथी, एवी सूचना करी ठे॥१॥

ए नव तत्त्वमांहेला जीव अने अजीव, ए वे
तत्त्व मात्र जाणवा योग्य ठे. पुण्य, संवर, निर्ज-
रा अने मोक्ष, ए चार तत्त्व ग्रहण करवा योग्य
ठे. परंतु एमांनुं पुण्यतत्त्व जे ठे, ते व्यवहार
नये करी श्रावकोने ग्रहण करवुं योग्य ठे, अने
निश्चय नयवडे त्याग करवुं योग्य ठे, तेमज मु-
निने उत्सर्गें त्याग करवुं योग्य ठे, अने अपवादे
ग्रहण करवुं योग्य ठे, तथा पाप, आश्रव अने
बंध, ए त्रण तत्त्व तो सर्वथा सर्वने त्याग करवा
योग्यज ठे ॥ उक्तं च ॥ हेया वंधाऽसव पा, वा
जीवाऽजीव हुंति विज्ञेया ॥ संवरं निज्जर मुखो
पुणं हुंति उवाए ॥१॥

ए नव तत्त्वनां नाम कहां, अन्यथा संक्षेप-
थी तो जीव अने अजीव, ए वे तत्त्वज श्री

आत्म उन्नति की ओर दत्तचित्त रहते हैं। जैनमत कहता है कि जहां आलस्य है वहां पाप है। श्री उमा स्वामीकृत तत्वार्थ सूत्र में हिंसा का भेद इस प्रकार लिखा है कि प्रमाद के योग से जो प्राणों का नाश करना है, वह हिंसा है। आलसी पुरुष न खाने में न पीने में न उठाने में न धरने में न बात करने में किसी ही काम में उचित यत्न न रखने के कारण जीव हिंसा के पाप के भागी होते हैं। जो भाई जिनेन्द्र दर्शन करने का उद्यम किंचित भी न करने पर और पूछने पर यह जवाब दे देते हैं कि भाई क्या करें हमारे भाग्य ही में नहीं जो थोड़ी सी भी फुरसत मंदिर जाने को मिले वे लोग और भी ज्यादा पाप के भागी होते हैं।

इस विषय का विशेष वर्णन जानना हो तो श्री पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ग्रन्थ की स्वाध्याय करके जान सकते हैं।

यहां पर यदि कोई प्रश्न करे कि कर्म वर्गणा के पुद्गलमूर्तिक हैं और आत्मा अमूर्तिक है किस प्रकार अमूर्तिक को मूर्तिक घेर सकता है इसका समाधान इस प्रकार है कि यह संसारी जीव अपनी वर्तमान दशा में अमूर्तिक नहीं किन्तु मूर्तिक है क्योंकि अनादि से कर्मों करके धिरा हुआ है उसी कर्म के साथ में और कर्म आकर भिल जाते हैं, शुद्ध जीव कर्मों से सम्मिलित नहीं हो सकता, जिस समय जीव के भाव अपने स्वभाव से भिन्न होते हैं उस समय कर्म वर्गणा के परमाणुओं को जोकि तीनों लोक में भरे हैं यह संसारी जीव आकर्षित कर लेता है। इस लिये कर्मों के फन्दों से छूटना ही इस जीव का परमहित है यह कर्म आठ = प्रकार, के होते हैं ॥

तथा अन्यत्र मतांतरे सात तत्त्व पण ठे, केमके पुण्य अने पाप, ए वे तत्त्वनो अंतर्जात्र, वंधतत्त्वमांहेज थाय ठे, कारण के जे शुज प्रकृतिकर्मबंध ते पुण्यतत्त्व अने अशुज प्रकृतिकर्मबंध ते पापतत्त्व ठे, माटे पुण्य पाप रहित सात तत्त्व कहीए. तेमज वली पांच तत्त्व पण कहां ठे, इत्यादिक घणो विस्तार विशेषावश्यक तथा तत्त्वार्थ अने लोकप्रकाशादि ग्रंथोथकी जाणवो. हवे प्रत्येक तत्त्वना जुदा जुदा जेद कहे ठे. चउदस चउदस बाया, -लीसा वासी अ हुंति बायाला ॥ सत्तावन्नं वारस, चउ नव जेअ्रा कमेणोसिं ॥ ९ ॥

गाथा २ जीना बूटा शब्दना अर्थ.

चउदस-चौद.

चउदस-चौद.

बायालीसा-बैतालीश.

वासी-व्याशी.

अ-अने.

हुंति-थाय छे.

(१) ज्ञानावरणी (२) दशनात्ररणी (३) अतगय (४) मोहनी (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) वेदनी ॥

इन में से पहले के ४ कर्म घातिया कहलाते हैं क्योंकि यह जीव के स्वभाव को आवरण करने वाले हैं और अत के ठ अघातिया क्योंकि यह जीव के स्वभाव को न ढक कर केवल ऐसे कारण भिलते हैं जोकि जीव को स्वभाव भूलने के कारण हो जाते हैं ॥

अध्याय पांचवां

[भाठ कम]

(१) ज्ञानावरणी कर्म

इस कर्म का यह स्वभाव है कि इस के सम्बन्ध से आत्मा का ज्ञान प्रगट नहीं होता तथा कम प्रगट होता है यह पाच प्रकार का होता है ॥

(१) मति ज्ञानावरणी—जो मति ज्ञान को न होने दे । मति ज्ञान यह ज्ञान है जो कि पाच इन्द्रि और मन के द्वारा किसी पदार्थ का जानै जैसे हम गीली वस्तु को आम इन्द्रि से देख कर उसके और लक्षण जान कर यह निश्चय करने हैं कि यह सोना है पीतल नहीं । यह मय ज्ञान 'मतिज्ञान' है । मति ज्ञानावरणी कर्म क पमती बढ़ती जाने क कारण जीवों का साधारण बुद्धि (Common Sense) कमती बढ़ती होती है इसके २८८ भेद हैं जिसका वर्णन श्री सरार्थ सिद्ध जी ग्रन्थ से जानना योग्य है ॥

ए नवे तत्त्वना (कमेण के०) क्रमेण, एटले क्रमे
करी (जेआ के०) जेदाः एटले जेद (हुंति के०)
जवंति एटले आय ठे.

उपर कहेलां नव तत्त्वना सर्व जेदनी संख्या
वसें ने ठोंतेर आय ठे. तेउभां अठ्याशी जेद अ-
रूपी ठे, अने एकसो ने अठ्याशी जेद रूपी ठे ॥
उक्तं च ॥ धम्माऽधम्माऽगासा, तिय तिय अद्धा
अजीव दसभा य ॥ सत्तावन्नं संवर, निज्जार दु-
दस मुत्ति नवगा य ॥ १ ॥ अठ्ठासि अरुवि हवइ,
संपइ जणामि चेव रूवीणं ॥ परमाणु देस पए-
सा, खंध चउ अजीव रूवीणं ॥ २ ॥ जीवे दस
चउ दु चउ, वासी वायाल हुंति चत्तारी ॥ सय
अठ्ठासी रूवी, दुसय ठस्सत्त नव तत्ते ॥ ३ ॥
गाथार्थः—धर्मा, अधर्मा, अन आकाशास्तिकाय,
ए दरेकना त्रण त्रण तथा अद्धो एटले काळ
ए अजीव, तेना १० जेद, तथा संवरना ५७ जेद,

(२) श्रुति ज्ञानावरणी—जो श्रुति ज्ञान को न होने दे । श्रुति ज्ञान मति ज्ञान पूर्वक होता है अर्थात् पदार्थों का विशेष हाल व भेद मालूम करना यह श्रुति ज्ञान का विषय है ११ अङ्ग १४ पूर्व का ज्ञान सब श्रुति ज्ञान है ॥

(३) अवधि ज्ञानावरणी वह ज्ञान है जो अवधि ज्ञान को न होने दे । अवधि ज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा तपस्वी मुनि अपने व और जीवों के पूर्व जन्म के चरित्रों को व आगामी चरित्रों को विचार करने से मालूम करते हैं यह ज्ञान रूपी पदार्थों ही को जान सकता है । यह ज्ञान देव और नारकियों के भी होता है जिससे वे अपने पूर्व भवका वृत्तांत विचार करने से जान लेते हैं ॥

(४) मन पर्यय ज्ञानावरणी—मन पर्यय ज्ञान को नहीं होने देती—मन पर्यय ज्ञान वह ज्ञान है जो कि दूसरों की मन सम्बन्धी सूक्ष्म बातों को व सूक्ष्म पुद्गल द्रव्यों के चरित्र को जान लेता है ॥

(५) केवल ज्ञानावरणी—केवल ज्ञान को नहीं होने देता केवल ज्ञान वह ज्ञान है जो कि सर्व पदार्थों की कुल पर्यायों को एक ही समय में मालूम करता है ॥

इस प्रकार ज्ञानावरणी कर्म के पांच भेद है । इस कर्म के आश्रव होकर बंधने (अर्थात् कर्मों का आकर आत्मा से सम्बन्ध करने) में नीचे लिखे कारण होते हैं । जब मन वचन और काय चलायमान होते हैं उसी समय कर्मों का आगमन होता है जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को घसीट लेता है इसी

ठे, तथापि जीव जेदे करी कर्म सहित संसारी पणामाटे अहीं रूपीमां गणयो ठे, तथा अजीवतत्त्वमांहेला पुज्जल द्रव्यना चार जेद रूपी अने धर्मास्तिकायादिक चार द्रव्यना दश जेद अरूपी ठे.

ए नवे तराना २७६ जेदमां जीव अजीव, रूपी अरूपी जेदोनी संख्यानो तथा हेय ज्ञेयादिनो यंत्र नीचे प्रमाणे ठे.

नाम	जीव.	अजीव.	रूपी.	अरूपी.	हेय.	ज्ञेय	उपादेय.
जीवतत्त्व	१४	१४	१४	...
अजीवतत्त्व	...	१४	४	१०	...	१४
पुण्यतत्त्व	...	४२	४२	४२
पापतत्त्व	८२	८२	...	८२
आश्रवतत्त्व	...	४२	४२	...	४२
संवरतत्त्व	५७	५७	५७
निर्जरातत्त्व	१२	१२	१२
बंधतत्त्व	...	४	४	...	४
मोक्षतत्त्व	९	९	९
	९२	१८४	१८८	८८	१२८	२८	१२०

प्रकार सरागी मन वचन काय कर्मा के प्रसीट लेन ह ॥ ;
 ज्ञानावरणी कर्म के आने (आश्रय) के कारण—

१—प्रदोष-तत्व ज्ञान की कथनी करने वाले से व उत्तम ज्ञान के देने वाले से ईषा भाव रखना प्रशसा न करके चुप रहना ॥

२—निहव-आप पदार्थों का हाल जानता हुआ भी अगर कोई पूछे तो यह कहना कि हम नहीं जानते भावाथ अपने ज्ञान को दूसरे से छिपाना ॥

३—मात्सर्य—अपने को शास्त्र ज्ञान व पदार्थों का ज्ञान होते सते और आप सिखावने योग्य होते सते भी दूसरे को न सिखलाया यह भाव रख व कि यदि दूसरा सीख जावेगा तो मेरी बराबरी करेगा ॥

४—अन्तराय-ज्ञान के अभ्यास में विद्या की उन्नति में विघ्न करना, विद्योन्नति के फारणों को न होने देना ॥

५—असादना-दूसरे के प्रकाश किये हुए ज्ञान को बर्जना याने मना करना ॥

६—उपघात-ठीक ठीक ज्ञान में भी दोष लगाना । यह छु तो मुख्य कारण ज्ञानावरणी कर्म के आश्रय के है । इनके सिवाय विद्या पढ़ना में आलस्य, शाल्त्र व पुस्तक पढ़ने में अनादर, आप घटुजानी होकर गव, करना, झूठा उपदेश देना, ज्ञानवानों का अपमान करना, 'बोटे शास्त्र का लिखना छुपाना व येचना इत्यादि जा जो बातें किसी प्रकार स भी

चतुर्विध, (पंच ठविहा के०) पंचपद्धिधाः, एटले
 पंचविध, तथा पद्धिध, एटले ठ प्रकारना (जीवा
 के०) जीवाः, एटले जीवो ठे. तेमां सर्व जीवने
 श्रुतज्ञाननो अनंतमो जाग उघामो रहेवाथ्री
 तेउ (चियण तसइयरेहिं के०) चेतनत्रसेतरैः, ते
 चेतन एटले चेतना लक्षणान् ठे, माटे एकविध
 जाणवुं. त्रस एटले जे चलन शक्तिमान् होय,
 तरुकाथ्री ठायाए आवे, अने ठायाथ्री तरुका-
 मां आवे, तथा त्रय देखी त्रास पास, तेने त्रस
 कहीए; अने इतर ते बीजा स्थावर एटले जे
 स्थिरतावान् होय, एम सर्व जीव द्विविध जा-
 णवा. (विय गइकरणकोएहिं के०) वेदगतिकरण-
 कायैः, एटले वेद त्रण, स्त्रीवेद, पुरुषवेद अने नपुं-
 सकवेद, एम सर्व जीव त्रिविध जाणवा. गति चार,
 देवता, मनुष्य, नारकी अने तिर्यच, एम सर्व
 जीव चतुर्विध जाणवा. करण ते इंद्रिय पांच,

अपने व दूसरे के ज्ञानाभ्यास में रोकने वाली हैं वे सब ज्ञाना-
चरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं ॥

हे हमारे प्यारे जैनी भाइयो ! देखो आपका प्राचीन शास्त्र
क्या कहता है—यथा आप लोगों का ज्ञानाभ्यास के कारणों
को न जारी करने के कारण तथा विद्योन्नति में, आलस्य करने
के कारण ज्ञानाचरणी कर्म का आश्रव न होगा ? क्या वह
विद्वान पंडित जोकि आप ज्ञान से परिपूर्ण होकर और अपने
ज्ञानरूपी ज्योति से हजारों के अज्ञानरूपी अंधरे को मेटने की
योग्यता रखने पर भी आलस्य करते हैं तथा दूसरों को वस्तु
का स्वरूप भले प्रकार यह समझ कर नहीं सिखलाते हैं कि
यह जान कर हमारी बराबरी करेंगे व हम से ज्ञान में उच्च
हो कर हमारे मान में विघ्न करेंगे ज्ञानाचरणी कर्म के आश्रव
के भागी नहीं हैं ? क्या वह हमारे सुख सेवी (पिन्शनयाफ्ला)
भाई जिनको सरकार पेन्शन इसी गरज से देती है कि वे
अपने अन्त के दिन सुख शान्तता पूर्वक बिताते हुये अपने
अनुभव से हासिल किये हुये ज्ञान को दूसरों को प्रदान करें
यदि ऐसा न करके अपने ज्ञानको छिपा कर रखें तो ज्ञाना-
चरणी कर्म के आश्रव के भागी नहीं है ?

हे हमारे जैनी भाइयो ! आप अपने प्राचीन शास्त्रों को
पढ़ कर उस पर चलने की कोशिश कीजिये । आपके शास्त्र
जब पुकार पुकार कर कहते हैं कि "ज्ञान विना करनी दुखदाई,
अज्ञानी कौटि वर्ष तप तपे तो जितने कर्मों का क्षय हो उतने
कर्मों को ज्ञानी एक क्षण भर तप करके नाश कर सकते हैं" तो
क्यों आप ज्ञान शून्य अवस्था अपनी करते जाते हैं । आपने अपने

गाथा ४ श्रीना वृटा शब्दना अर्थ.

एगिंदिय-एकेंद्रिय.

सुहुम-सूक्ष्म.

इयरा-इतर (वादर).

सन्नि-संज्ञी.

इयर-इतर (असंज्ञी).

पणिदिआ-पंचेंद्रिय.

स-सहित, साथे.

वि-वेंद्रिय.

ति-तेंद्रिय.

चउ-चउरिंद्रिय.

अपजत्ता-अपर्याप्ता.

पज्जत्ता-पर्याप्ता.

कमेण-अनुक्रमे.

चउदस-चौद

जियट्टाणा-जीवनां स्थान.

विस्तारार्थः—(एगिंदिय के०) एकेंद्रियाः, एट-
ले एकेंद्रियना वे जेद ठे, (सुहुमियरा के०) सूक्ष्म-
तराः एटले एक सूक्ष्मबीजा इतर एटले वादर,
पांचे स्थावरने एकेंद्रिय कहे ठे. तेमां जे चौद
राजलोकमां व्यापी रह्या ठे, पर्वत प्रमुखने जेदीने
जाय आवे, कोइ वस्तुथी जेदाय नहीं, ने ठेदाय
पण नहीं, अग्नि जेने वाली शक्रे नहीं, चर्मदृष्टिए
देखाय नहीं, मनुष्यादिक कोइ प्राणीना उपयोग

को अज्ञानी बनाकर अपना धर्म कर्म राज्य पाट सब गँवा दिया। आपका रहा सहा व्यापार भी चला जा रहा है। आप सरासर देखते हैं पर कुछ उपाय नहीं करते। यह जमाना आलस्य का नहीं, चेष्टा का है। यदि उद्योगी पुरुष हों तो बहुत कुछ कर सकता है। आपकी रतता भी आप से निकल कर आप से ज्यादा जानकारों (अग्रज व्यापारी) के हाथ में चली जा रही है। आपकी रई की खता कुछ दिनों में युरुपियन उद्योगी व्यापारियों के हाथ में चली जायगी। आप यह दरते हुए भी कि आपके भाइ जापान नित्रासा पुरुषों ने कितनी उन्नति अपनी की है, आप विलकुल बे-खबर हैं। जापान के लोग बौद्धमता है। वे भी जैन धर्म के माफिक ज्ञान को सर्वोत्तम समझते हैं। उन्होंने शास्त्रानुसार आशा का मान ज्ञान को इतना बढ़ाया कि ५० वर्ष का भारत भीतर कुल सादागरी की चीजें (दियासलाह, घटन, सुई, फंची, कपडा इत्यादि रोज की काम की चीज) जो पहले विलायत से मगाते थे अपने घर में प्रस्तुत करने लगे। भाइयो! जापान का तरकी का केवल कारण विद्या का प्रचार है। मि० धर्मपाल ता० २८ अप्रैल १९०४ के "पेडवोरेट" में लिखते हैं कि जापान की तरकी का असली कारण विद्या का प्रचार है। जापान में काइ भा आपढ़ बधा नहीं है। "There are no illiterate children in the land of the Rising Sun" यहा के अनाथ बालकों का यहा की म्युनिसिपैलिटी और सररर दानों बढी रावरगीरी रगत है। ग्राम छोटे घालकों को कारीगरी निग्र लाई जाता है। मि० धर्मपाल कहते हैं कि सन् १८८६ में जापान

गाथा ४ थीना बूटा शब्दना अर्थ.

एगिंदिय-एकेंद्रिय.

सुहुम-सूक्ष्म.

इयरा-इतर (वादर).

सन्नि-संज्ञी.

इयर-इतर (असंज्ञी).

पणिंदिआ-पंचेंद्रिय.

स-सहित, साथे.

वि-वेंद्रिय.

ति-तेंद्रिय.

चउ-चउरिंद्रिय.

अपजत्ता-अपर्याप्ता.

पज्जत्ता-पर्याप्ता.

क्रमेण-अनुक्रमे.

चउदस-चौद

जियट्टाणा-जीवनां स्थान.

विस्तारार्थः—(एगिंदिय के०) एकेंद्रियाः, एट-
ले एकेंद्रियना वे जेद ठे, (सुहुमियरा के०) सूक्ष्म-
तराः एटले एक सूक्ष्मबीजा इतर एटले वादर,
पांचे स्थावरने एकेंद्रिय कहे ठे. तेमां जे चौद
राजलोकमां व्यापी रह्या ठे, पर्वत प्रमुखने जेदीने
जाय आवे, कोइ वस्तुथी जेदाय नहीं, ने ठेदाय
पण नहीं, अग्नि जेने वाली शके नहीं, चर्मदृष्टिए
देखाय नहीं, मनुष्यादिक कोइ प्राणीना उपयोग

के लोग मुश्किल से १ ग्लास लैंप की चिमनी बना सकते थे। जब कि ३ वर्ष बाद सन १६०२ में देगा गया तो चें ६००० टन वाले जहाज़ अपने ऊँक घरों में तय्यार कर रहे हैं। पस भाइयो ! प्रमाद का छोड़ कर अपना सर्वस्व प्रात की उन्नति में खर्च काजिए, तभी आप धनावरणी कर्म के संयोग से दूर रहेंगे। अन्यथा यह कर्म बंध कर आपकी आत्मा को निगोद आदि पकेन्द्री पर्याय में ले जाकर अज्ञानी की भांति ही असमर्थ कर देंगे ॥

अध्याय छठा ।

२—दर्शनावरणी कर्म

यह वह कर्म है कि जिसके सम्यन्ध से आत्मा की दर्शन शक्ति प्रकट नहीं होती तथा कम प्रकट होती है। यह नव प्रकार का होता है—

(१) अचक्षु दर्शनावरणी—वह कर्म है जिसके उदय से यह प्राणी अधा होता व कम दृष्टिवाला होता है ।

(२) अश्रु दर्शनावरणी—वह है जिसके द्वारा आंख को छोड़कर और चार इंद्रि जैसे नाक कान मुंह स्पर्श इनके द्वारा मालूम करना न हो ।

(३) अवधि दर्शनावरणी—अवधि दर्शन को न होने दे । अवधि दर्शन वह दृष्टि है कि जिसके द्वारा यह जीव अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को देखे । जैसे कुछ भव पहिले की बातें अपनी तथा औरों की देखकर कहना ।

एटले वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौरिंद्रिय, ए प्रत्येकनो एक एक जेद कह्यो ठे. तेणे करी सहित करी ए, ते वारे सात जेद थाय.

एवी रीते एकेंद्रियना वे जेद, वेंद्रियनो एक जेद, तेंद्रियनो एक जेद, चौरिंद्रियनो एक जेद तथा पंचेंद्रियना वे जेद, मलीने सात जेद थया. ए साते जेदना जीवो वे प्रकारे होय ठे—एक (अपजत्ता के०) अपर्याताः, एटले अपर्याता तथा बीजा (पज्जात्ता के०) पर्याताः एटले पर्याता. तेमां जेने जेटली पर्यासि कही ठे, ते पूरी कीधी न होय, अने मरण पामे, तेने अपर्याता कहे ठे. तथा जेने जेटली पर्यासि कही ठे, ते पूरी कीधी होय, अने पठी मरण पामे, तेने पर्याता कहे ठे.

पूर्वे कहेला सात जेदना अपर्याता अने सात जेदना पर्याता, ए वे प्रकार होवायी (कमेण के०) क्रमेण, एटले उक्त अनुक्रमे करी (चउदस के०)

(४) केवल दर्शनावरणी—आत्मा को तीन लोक देखने की शक्ति अर्थात् केवल दर्शन कौ न होने दे ।

(५) निद्रा—जिसके द्वारा नींद आवे ।

(६) निद्रा निद्रा—वह है जिसके द्वारा निद्रा बार बार आवे ।

(७) प्रचलता—वह है जिसके द्वारा बड़े बड़े आघात आवें ।

(८) प्रचला प्रचला—नाहो आघात बार बार आवे ।

(९) स्थानगृद्धि—वह है जिसके द्वारा सोता सोता उठ कुछ काम करे, फिर सो रहे और न जाने जो मने कुछ किया था । इस दर्शनावरणी कम का आश्रय होकर आत्मा के सार्थ बंधने में वही छ कारण है जो कि ज्ञानावरणी कम के आश्रय के कारण है—

१ । प्रदोष—अच्छी दृष्टि व इत्नी विषय अग्रधि व केवल दशनादि—इनको दूसरों में उत्तम देखकर ईर्ष्या करना ।

२ । निह्न—याप जिस पदार्थ को देखा होय उसको दूसरों से छिपाना ।

३ । मात्सर्य—दूसरा शास्त्रादिक व और वस्तु देखना चाहे उसको न दिग्याना न बतलाना—ऐसा भाव रखना कि देख कर मेरी हानि करेगा ।

४ । अन्तराय—दूसरे के पदार्थ देखने में विघ्न करना ।

५ । आमादना—दूसरे को देखा दुइ चीज का मना करना ।

६ । उपघान—ठीक ठीक देखा दुइ चीज में व देखने की शक्ति में दोष लगाना । इसके भिन्नाय दूसरे के नेत्र उपाङ्गा, पर की इन्द्रियों को विगाडना चाहता । अरना दृष्टि का गर्व करना, दिन में सोचना तथा आज्ञस्य रूप रहना, सम्पक-दृष्टि

पंचेंद्रियनो तेरसो ज्ञेद, (विगलतिगं के०) विक-
त्रिक एटले वेंद्रिय, तेंद्रिय तथा चौरद्रियना
त्रण ज्ञेद मलीने सोल ज्ञेद थाय ठे, (इय सो-
लस के०) ए सोल ज्ञेदोना जीव वे प्रकारना ठे,
एक (पज्जत्ता के०) पर्याप्ता, वीजा (अपजत्ता के०)
अपर्याप्ता मलीने (जीव के०) जीवना (वत्तीसं
के०) वत्रीश ज्ञेद थाय ठे.

शास्त्रांतरमां सर्व संसारी जीवोना पांचसं ने
त्रेसठ ज्ञेद पण कह्या ठे. तेमां मनुष्योना त्रण-
सं ने त्रण ज्ञेद थाय ठे, ते आवी रीते—पांच
महाविदेह क्षेत्र, पांच जरत क्षेत्र, तथा पांच
ऐरवत क्षेत्र, मलीने पंदर कर्मचूमि क्षेत्र ठे.
तेमज त्रीश अकर्मचूमि युगलियानां क्षेत्र ठे,
अने ठप्पन अंतर्द्वीप ठे. ए सर्व मलीने पर्या-
प्ताना एकसो ने एक ज्ञेद, अपर्याप्ताना एकसो ने
एक ज्ञेद, तथा संमूर्धिम अपर्याप्ताना एकसो ने
एक ज्ञेद, मलीने त्रणसो ने त्रण ज्ञेद थाय.

को दूषण लगावना, कुतीर्थ की प्रशंसा करनी । प्राणीन का घात करना तथा यतीश्वरों को देख ग्लानि करनी इत्यादि दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण है। इन कारणों को वचन के लिये हमें अपने मन वचन काय पर काबू रखना चाहिये क्योंकि जिस खमय इनमे से कोई चलता है क्रामांश पुद्गल उसी समय उसके भाव (Thought) के प्रेरे उसके पास आते हैं और पुराने कर्मरूपी रज पर आकर जम जाते हैं ।

प्यारे भाइयो ! ऐसा जानकर कि आलस्य और प्रमाद हमारे दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं, हमें इसे दूर कर अपने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों की परिपूर्णता में कटिबद्ध होना चाहिये । यदि हमारे वर्तमान जैन जाति के शास्त्र के मर्मों इस दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारणों को छोड़ कर निरालसी हो पदार्थों का भेद मालूम करें और पुरुषार्थ की ओर ध्यान करें तो थोड़े ही दिनों में हमारी इस जैन जाति का सुधार हो जाय । खेद इस बात का है कि हमारे भाई अपने महान् आचार्यों के सदुपदेशों पर गौर ही नहीं करते ॥

अध्याय सातवां ।

३—बेदनी कर्म

यह वह कर्म है जिसके उदय होने से प्राणियों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है जिनके सबब से संसार में मोह करनेवाला प्राणी सुख व दुःख मालूम करता है, परन्तु

पर्याप्ता तथा अपर्याप्ता ए वे प्रकार करतां वीश भेद थाय. तथा पूर्वना अट्वावीश अने ए वीश मलीने अरुतालीश भेद थया.

एवी रीते मनुष्योना त्रणसो ने त्रण भेद, देवताना एकसो ने अष्टाणुं भेद, नारकीना चौद जेद, अने तिर्थचना अरुतालीश जेद ए सर्व मली पांचसो ने त्रेसठ भेद थया ॥ इति ॥ ४ ॥

हवे जीवतुं लक्षण कहे ठे.

अनुगटुपवृत्तं ॥ नाणं च दंसणं चैव,
चरित्तं च तवो तथा ॥ वीरियं उवज-
गो अ, एअं जीवस्स लखणं ॥ ५ ॥

गाथा ५ मीना तूटा शब्दना अर्थ.

नाणं-ज्ञान.

च-अने.

दंसणं-दर्शन.

चैव-निश्चै.

चरित्तं-चारित्र.

च-अने.

तवो-तप.

तथा-तेमज.

वीरियं-वीर्य.

उवओगो-उपयोग.

अ-अने,

एअं-ए, आ.

जीवस्स-जीवतुं.

लखण-लक्षण.

जिसके मोह गल जाता है उसको वेदना कर्म का उदय सुख व दुःख अनुभव व विचार नहीं करा सकता है। यह वेदनी कम दो तरह का होता है—

१—साता वेदनी।

२—असाता वेदनी ॥

साता वेदनी कर्म का जब उदय होता है तब देव गति में सुन्दर शरार, सुन्दर देवागना, अनेक ऋद्धिया, अनेक देव चाकर आदि चीजों का मिलाप होने से सुख होता है और मनुष्य गति में राज्यादि विभव (दौलत), निरोग शरीर, अनेक चाकर सुन्दर स्त्री, अनेक मन मोहने महल आदि चीजों का सयाग होकर सुख होता है; निर्यच (पशु) गति में यदि घोड़े, गौ कुत्ते आदि की यात्रि में गण ना राजा महाराजा व धन धानों के यत्न रहता हुआ कि जहा कई नाकर उनकी हर वस्तु सेवा किया करें व मातृक भी सुख होकर प्यार किया करें। इसी तरह समझ ता चाहिये कि जो चीजें ऐसी हो कि जिनके मिलने से मोहनी जीव सुख मालूम करते हैं, वे सब चीजें साता वेदनी कर्म के उदय से सुख देती मालूम होती हैं।

असाता वेदनी कर्म के उदय से यह प्राणी नरकों में जा कर अनप प्रकार के दुःख व चीजों का मिलाप पाता है। जमीन बदरुदार, दरख्त के पत्ते कटील, महाराजा कुत्तुप शरार इत्यादि गोटी गोटी धानों की प्राप्ति कर दुःख सहने से तबलीक होती है। पशुगति में भृगु प्यास के दुःख, बलवान से डगने के दुःख, गरमी सरदी के दुःख, मनुष्य व अपने साथी जायदों से भारे जा व दुःख, छोटे छोटे जायदों के दुःख

प्रकारनां हिलादिक अशुभ परिणामथी निवृत्ति
 तथा व्यवहारथी क्रियानिरोधरूप चारित्रमांनुं
 गमे ते एक अथवा अधिक चारित्र (एटले
 ज्ञानादि गुणमां रमणता करवी ते,) जेमां होय,
 (च के०) तथा (तवो के०) तपः, एटले तप वे
 प्रकारनुं कह्युं ठे, तेमां एक द्रव्यथी, एना वार
 जेद ठे. तेना नाम निर्जरातत्त्वमां कहेवाशे.
 बीजुं इहानिरोधरूप जावथी एमांनुं गमे ते एक
 अथवा अधिक तप जेमां होय, (तहा के०)
 तथा, एटले तेमज (वीरियं के०) वीर्य, ते करण
 तथा लब्धिरूप अथवा बल पराक्रमरूप ए वे
 प्रकारनां वीर्यमांनुं गमे ते एक अथवा वधारे
 वीर्य (एटले आत्मानी शक्ति) जेमां होय, तथा
 (उक्ठगो के०) उपयोगः, ते पांच ज्ञान, त्रण
 अज्ञान तथा चार दर्शन, ए वार प्रकारना सां-
 कार तथा निराकाररूप उपयोगमांनो गमे ते

की कोई हदही नहीं: पानी बरसा, कुम्हला कर मर गए; ज्यादा धूप पड़ी, धूप की तेजी में मर गए; आलं पत्थर गिरे, भुंड के भुंड स्वाहा हो गये; आदिमयों व जानवरों के पैरों के तले कुचल गए, थोड़ी देर तक तडफड़ा तडफड़ा कर मरे। ऐसे अनेक दुखदायक चीजों का मिलाप होता है। हमारे नेचर के तमाशा देखने वालों ने (Naturalist) इस बात को अच्छी तरह गौर किया होगा ॥

इसी तरह मनुष्य गति में दरिद्री, रोगी, धनहीन होना, खोटी स्त्री, खोटे भाई, खोटे पुत्र का संयोग होना इष्ट वियोग (जिससे हम प्राप्ति करते हैं उस चेतन व अचेतन चीज़ का यकायक बिछुड जाना), अनिष्ट संयोग (जिस चेतन व अचेतन चीज़ का मिलाप हम नहीं चाहते हैं उसी ही चीज़ का संयोग होना) के दुख भुगतना इत्यादि दुखदायक चीजों का मिलाप होने से दुख होता है। देवगति में नीच जाति के देव होकर बड़े देवों की चाकरी करना, उनके लिये सवारी का काम देना, देवांगना (जिनकी उमर थोड़ी होती है) वियोग के दुख भुगतना इत्यादि दुख की प्राप्ति होती है।

वेदनी कर्म का आत्मा के प्रदेशों के पास आगमन कैसे भावों से व किस ओर अपना मन बचन काय रखने से होता है ?

इस प्रश्न का उत्तर इस भांति जानना—

असाता वेदनी कर्म के आश्रव की कारणभूत इतनी बातें हैं— (१) दुख, (२) शोक, (३) ताप, (४) आक्रंदन, (५) बध, (६) परिवेदन ॥

गाथा इ ठीना गृहा शब्दना अर्थ.

भ्रातृ-भातर.

सरीर-शरीर.

इंद्रिय-इन्द्रिय.

पञ्चमी पर्याप्त.

आणवाण-आणवो-आणव.

भाम-भाषा.

मण-मन.

चर-चार.

पुं-पुं.

रुपि-रुप-रुप.

व-वने.

इम-इन्द्रियने.

विमण-विमणेंद्रियने.

धमन्नि-धमन्तीने.

मन्नीण-मन्नीने.

विस्तारार्थः—पुद्गलना उपचयार्थी अथैजे
पुद्गलपरिणमनहेतु शक्ति विशेष, तेने पर्याप्ति
कहे ठे. एना वे जेद ठे—एक लब्धिपर्याप्ति
अने बीजी करणपर्याप्ति. जे कर्मना उदयार्थी
आरंजेली स्वयोग्य पर्याप्ति सर्व पूरी करी नथी,
पण करशे, तेने लब्धिपर्याप्ति कहे ठे, अने
जेणे स्वयोग्य पर्याप्ति सर्व पूरी करी लीधी,
तेने करणपर्याप्ति कहे ठे.

(१) दु ख—दूसरे को दु ख देने के परिणाम या अपा ही को किसी रज व सवय दुग्ग देने के भाव तथा आप भी दुखी हाकर दूसरे को दुग्गी कराा सो दुय है ।

(२) शोक—जिस चेतन व अचेतन चीज म अपन को साता मालूम हाती थी उसका बिछुड जाना, इस सवय से अपने परिणामों को मैला करना या रन कराा दूसरे का शोकित करना व आप और पर दोनो शकित हो जाना सो शोक है ।

(३) ताप—किसी सवय से अपनी बन्नामी होनी होय इस कारण परिणाम मैल करके मन में पड़ताग है (यदि कोई अशुभ काय्य अपन स हो गया हाय उमके फिर न करने के भाव करके जो पड़ताना उसका नाम नाप नहीं है) । दूसर को ताप करना व आप और दूसरे दानों सताप में मगा होना सो ताप है ।

(४) आकदन—तथियत में रज को नेनी के सवय रोता, कलागा व दानो राने लगना सो आकदन है ।

(५) यत्र—अपने व किमी और के आयुयल इट्रिय श्वा सोग्राम आदि प्राणों का यियाग करना याने मार डालना या आप और पर दोनों मर जाना सो यत्र है ।

(६) परिद्वेन—पेसा राना कि जिसका सुनकर लोगों के दिलों में दया (रहम) आ जावे । तथा दूसर को पेसा कमाना व आप और पर दोनो इसी तरह रोने लगना सो परिद्वेन है ।

वडे आहार लक्ष्ने तेने रसपणे परिणमाववानी
 जे शक्तिविशेष, ते आहार एटले आहारपर्याप्ति
 कहेवाय ठे. पठी ते रसरूप परिणामने रस,
 रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य,
 ए सात धातुपणे परिणमावीने शरीर बांधवानी
 जे शक्ति विशेष, ते शरीर एटले शरीरपर्याप्ति
 कहेवाय ठे. पठी ते सात धातुपणे परिणमाव्यो
 जे रस, ते जेने जेटलां द्रव्य इंद्रिय जोडए, तेने
 तेटलां इंद्रियपणे परिणमाववानी जे शक्तिविशेष,
 ते इंद्रिय एटले इंद्रियपर्याप्ति कहेवाय छे. पर्या-
 प्ति ए शब्द सर्वनी साथे जोरुवो, केमके कहेली
 त्रण पर्याप्ति पूरी कख्या विना कोइ जीव मरण
 पामे नहीं, माटे पर्याप्ति शब्द वचमां कह्यो छे.
 ए त्रण पर्याप्ति बांधीने पठी (आणपाणजासमणे
 के०) आनप्राणजासामनांसि, एटले श्वासोद्ध्वास
 योग्य वर्णानां दक्षिण लक्ष श्वासोद्ध्वासपणे

य छुः बातें आप करे व दूसरे को करे व किसी की ऐसी दशा देखकर खुश होय व इन्हीं को मन बचन और काय से करे यह सब भाव व क्रियाएं असाना वेदनी कर्म के आश्रव के कारण होनी हैं। इसके सिवाय दूसरे की बदनामी करना, चुगली खाना, कठोर परिणाम होना, दूसरे के कपाय भाव से अंग उपंग छुद् डालना, डर दिखलाना, कपाय भाव से अपनी तारीफ़ करना, दूसरे की बुराई करना, दूसरों के परिणाम दुखा देना आरंभ व परिग्रह में बड़ा ममत्व रखना, विश्वासघात (फरेब) करना. स्वभाव टेंढा रखना जीवों को वेमतलव दंड देना, विष पीना, या दूसरे को ज़हर पिलाना इत्यादिक जो जो पाप से मिले भाव हैं वह असाना वेदनी के आश्रव के कारण है। जैसे जैसे भाव में विकार होते हैं वैसे ही कार्माण जाति के पुद्गल आकर आत्मा के पुराने कर्मों के साथ में मिल जाते हैं और कालान्तर में फल देते हैं। इसी प्रकार साता वेदनीय के आश्रव के कारण यह हैं—

(१) भूत और वृत्ती पर अनुकम्पा.—याने भूत कहिये सामान्य प्राणी [Common human beings] और वृत्ती कहिये वृत्त के धारी श्रावकादि पर पीड़ा देख कर ऐसे परिणाम होना मानों यह दुख हमही को हो रहे हैं और अपनी शक्ति भर देख दूर करने का यत्न करना ।

[२] दान—दूसरे जीवों के भले के लिये अपना धन आदिक देना सो दान है। सो यह दान ४ प्रकार का है, औषध दान—दवाई का दान, आहार दान—भोजन का दान, अभयदान—जिसका कोई रक्षक न होय उसको रक्षा का दान, विद्या दान—याने इल्म हुनर का दान ।

वडे आहार लइने तेने रसपणे परिणमाववानी
 जे शक्तिविशेष, ते आहार एटले आहारपर्याप्ति
 कहेवाय ठे. पढी ते रसरूप परिणामने रस,
 रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य,
 ए सात धातुपणे परिणमाववानी शरीर बांधवानी
 जे शक्ति विशेष, ते शरीर एटले शरीरपर्याप्ति
 कहेवाय ठे. पढी ते सात धातुपणे परिणमाववो
 जे रस, ते जेने जेटलां द्रव्य इंद्रिय जोइए, तेने
 तेटलां इंद्रियपणे परिणमाववानी जे शक्तिविशेष,
 ते इंद्रिय एटले इंद्रियपर्याप्ति कहेवाय छे. पर्या-
 प्ति ए शब्द सर्वनी साथे जोरुवो, केमके कहेली
 त्रण पर्याप्ति पूरी कख्य। विना कोइ जीव मरण
 पामे नहीं, माटे पर्याप्ति शब्द वचमां कह्यो छे
 ए त्रण पर्याप्ति बांधीने पढी (आणपाणजासमणे
 के०) आनप्राणजासामनांसि, एटले श्वासोच्छ्वास
 योग्य वर्गणानां दक्षिक लइ श्वासोच्छ्वासपणे

(३) सरागसंयम—धर्म की प्रीति के स्वयं समय रखना याने अपने इन्द्रिय और मन को राकना और इसी लिये कुछ विलकुल छोड़नेवाली चीजों को छोड़ना व कुछ का प्रमाण याने गिता परये भंगना—या थायक के १२ व्रत पालना व अज्ञान तप करना व अकाम निजरा ये भाव होता । अकाम निजरा इस कहते हैं कि कामों का उदय होकर भङना, उस समय किन्ना रात या कामना याने इच्छा का न हाना ।

(४) याग—मन वचना राय यागों का शुभ रहना याने मन में अच्छे भाव वचन हित मिन व फाय का अच्छे कामों में लगाता ।

(५) क्षाति—उमाभाव का होना, याने क्रोध अथात् गुन्ने को न हान देता ।

(६) शांथ -लाभ व भावों का चित्त में न होना ।

यह मुख्य कर्मक दु याने साता वेदना कम ये आश्रय के कारण न्त है । इसके सिवाय अरहन की पूजा में भाव व धारण, वृद्ध (मुद्ध) तपस्वी, व अथाथ विधवाआ को रक्षा में उद्यमो [मुन्नद] रहता, सरल परिणाम याने साध परिणाम धरना, धियाय रूप रहता, मान याने घमड का न करना हत्यादि ना अच्छे भाव व अन्ते यचना व अन्दा (शुभ) फाय चष्टा—यह सर मता, उदाय कम ये आश्रय के कारण हैं ।

प्यार जता भाइया । यह वेदनी कम जच तप दूर न हा तप तक कभा दुग फता सुग की समिप्रा प्राप्त हाता रहता

आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति इंद्रियपर्याप्ति तथा श्वसोच्चासपर्याप्ति, ए चार पर्याप्ति एकेंद्रियने होय. कहेली चार पर्याप्तिउनी साथे पांचमी ज्ञापापर्याप्ति जोमीने पांच पर्याप्ति विकलेंद्रिय, एटले वेंद्रिय, तेंद्रिय तथा चौरिंद्रियने प्रत्येके होय. एज पांच पर्याप्तिओ असंझी पंचेंद्रियने होय, अने ठए पर्याप्तिओ संझी पंचेंद्रियने होय ॥ इति ॥ ६ ॥

अहींआं जे पंचेंद्रियनी अपेक्षाए न्यून इंद्रिय होय, तेने विकलेंद्रिय कहीए. आ ठेकाणे कोइ एवी आशंका करे, के एकेंद्रिय पण पंचेंद्रियनी अपेक्षाए न्यून ठे, तो तेने केम विकलेंद्रिय कहेता नथी? तेने उत्तर कहे ठे के, त्रस अने स्थावर जीव ठे, तेमां स्थावरव्यापक सकल लोक ठे, अने विकलेंद्रियनो सद्भाव तिर्यग्लोके ज ठे, ते माटे त्रसमांहे विकलेंद्रियपणुं कहेवाय

है जिनमें कि मोही मन लीन होकर अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहचानता ।

परन्तु निज आत्मस्वरूप का पहिचानना दूर रहे, हम कभी इस बात का विचार तक नहीं करते हैं कि साता वेदनी व असाता वेदनी का आश्रय किन किन बातों से होता है । इसी हमारे विचार के न होने ही के कारण हम बाल्य विवाह करते शंका नहीं करते, हम वृद्ध विवाह करते डरने नहीं, हम बालकों को विद्वान करने की परवाह नहीं करते, हम अपनी जाति के भाइयों को दिन पर दिन अवनत दशा में प्राप्त होते हुए भी उन फिजूल खर्ची आदिक कारणों को नहीं रोकते । क्या कहें, यदि कोई विद्वान मंडली इन जैन धर्म के सम्यक् उपदेशों को चित्त में धारण करे तो उस मंडली को कैसे सुख और शांतता की प्राप्ति हो सो कुछ शुमार में नहीं आ सकता ।

अध्याय आठवां ।

मोहनी कर्म ।

यह वह कर्म है जिसके कारण यह जीव अपने से जुदी चीजों में ऐसा लुभा जाता है कि अपने आपको भूल जाता है । जैसे मदिरा (शराब] का नशा चढ़ता है, वैसेही मोह का नशा होता है । इस कर्म के खास खास भेद दो हैं—(१) दर्शन मोहनी, (२) चारित्र मोहनी ।

प्रसंगे प्राप्त थयेलां पांच इंद्रियोना त्रेवीश विषय कहे ठे—हलवो, जारी, सुंवालो, खरखरो, दूखो, चोपड्यो, टाढो, उनो ए आठ विषय स्पर्शनेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो जाणे नहीं. तीखो, करवो, कपायेलो, खाटो, मीठो ए पांच विषय रसनेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो न जाणे. सुरजिगंध, दुरजिगंध, ए वे विषय घ्राणेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो न जाणे. कालो, नीली, रातो, पीलो, धोलो ए पांच विषय चक्षुरिंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो न जाणे. जीवशब्द, अजीवशब्द, मिश्र शब्द ए त्रण विषय श्रोत्रेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो जाणे नहीं. ए पांचे इंद्रियोना विषय एकठा करत त्रेवीश थाय. तेनुं जाणपणुं मन सहित जीव, ते जे इंद्रियमां जले, ते इंद्रिय पोताना विषयने जाणे, पण जीवना व्यापार विना इंद्रियो सर्व जरूरुप ठे, भाटे विषयने न जाणे.

दर्शन मोहनी हमारा विश्वास [अकीर्ति] को मद की दशा में रखती, याने जिसके कारण हमारा विश्वास ठीक नहीं होता।

चारित्र मोहनी के कारण हमारा आचरण मतवारे का पेसा होता है, याने उचित व्यवहार अपने मन बचन काय का नहीं होना।

दर्शन मोहनी ३ प्रकार है—

(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यक् मिथ्यात्व, (३) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व।

(१) मिथ्यात्व, जिसके उदय से तत्वाथ का अज्ञान न हो, याने जीव अजीव बगैरह तत्वों के जो असली मतवाय हैं उस पर यकीन न हो। इसी तरह इन तत्वों के स्वरूप को बतलाने वाले देव, गुरु शास्त्र का भी, ठीक विश्वास न हा, रागी छेपी देवों का देव माने, रागी छेपी परिग्रहधारी गुरुओं को गुरु माने, हिंसा के पुष्ट करनेवाले व ससार से प्रीति बढ़ानेवाले शास्त्रों को शास्त्र माने, आदि मिथ्यात्व है।

(२) सम्यक् मिथ्यात्व—जीव अजीव आदि तत्वों का व देव गुरु शास्त्र का कुछ तो अज्ञान होय और कुछ न होय, याने सम्यक् और मिथ्यात्व मिले हुए हों। जैसे दही और गुड का मिला हुआ स्वाद होता है।

(३) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व—जिसके उदय से सम्यक् विगडे तो नहीं परन्तु अज्ञान में मैलापन रहे। जैसे जीवादि

विस्तारार्थः—(पणिंद्रियत्त्रिवलूसासआउ के०)
 पंचेंद्रियत्रिवलोच्छ्वासायुंषि, एटले स्पर्शनेंद्रिय,
 रसनेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, चक्षुरिंद्रिय तथा श्रोत्रेंद्रिय
 ए पांच इंद्रिय; मनोबल, वचनबल तथा काय-
 बल, ए त्रण बल; श्वासोच्छ्वास, अने आयुष्य,
 एटले जे जीवने जवनी साथे नियत बंधक होय,
 ते ए (दस पाण के०) दश प्राणाः, एटले दश
 प्राण जाणवा.

कया कया जीवने केटला केटला प्राण होय?
 ते कहे छे—पृथिव्यादि पांच स्थावररूप (इगदु-
 तिचउरिंदिणं के०) एकद्वित्रिचतुर्गिंद्रियाणां,
 एटले एकेंद्रि, वेइंद्रि, तेइंद्रि तथा चौइंद्रियना
 अनुक्रमे (चउ ठ सग अठ के०) चत्वारः षट्
 सप्त अष्ट, एटले चार, ठ सात अने आठ प्राण
 होय, ते आ रीते एकेंद्रियने एक स्पर्शनेंद्रिय,

तत्वों का श्रद्धान तो है परन्तु कभी-कभी निश्चयनयं से सर्व जीव एकही स्वरूप हैं। इस बात को भूल जाना, भेद समझने लगना, अथवा सच्चे देवादि का स्वरूप तो मालुम है परन्तु कभी कभी ऐसा भ्रम करना कि शान्तनाथ जी शान्ति के कर्ता हैं, पार्श्वनाथ जी ही हमारे सुख के दाता, याने कभी कभी सर्व ही अरहंत देवों को एक सा न समझना।

चारित्र मोहनी के २५ भेद हैं। इनमें नौ नोकषाय कहलाते हैं और १६ कषाय हैं।

नौ भेद नोकषाय के यह हैं—

- (१) हास्य—जिसके उदय से हास्य (मज़ाक) प्रकट हो।
- (२) रति—जिसके उदय से संसारी चीजों में तवियन लीन हो जाय। (३) अरति—जिसके उदय से कुछ सुहावे नहीं। (४) शोक—जिसके उदय से किसी इष्ट के वियोग होने से रंज करे। (५) भय—जिसके उदय से दुःखकारी चीज़ से डरे। (६) जुगुप्सा जिसके उदय से अपना दोष (ऐव) छिपावे और दूसरे के दोष देख परिणाम मैले करे याने नफरत करे। (७) स्त्री वेद—जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भाव होय। (८) पुरुष वेद—जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भाव होय। (९) नपुंसक वेद—जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भाव होय।

१६ कषाय यह हैं—क्रोध (गुस्सा), मान (गरूर), माया (कपट दगाधाजी), लोभ (लातच) यह चार कषाय हैं। इन चारों के चार चार भेद हैं याने अनन्तानुबन्धी क्रोध व

जे संमूर्द्धिम तिर्यच, ए ष्टसंज्ञी संमूर्द्धिम पंचेन्द्रियने उपर कहेला आठ प्राणनी साथे श्रोत्रेन्द्रिय जोड्याशी (नव के०) नव प्राण होय. एमां एटलु विशेष समजवानुं ठे के, संमूर्द्धिम वे प्रका रना होय ठे. एक संमूर्द्धिम मनुष्य अने वीजा संमूर्द्धिम तिर्यच, तेउमां संमूर्द्धि तिर्यचने तो कहेला नव प्राण होय ठे, एवो नियम ठे; पण संमूर्द्धिम मनुष्यने वचनबल नहीं होवने लीधे आठज प्राण होय ठे, तेमां पण जो श्वासोष्वास पर्याप्ति बांधतो ठतो मरण पामे, तो सातज प्राण रहे ठे; अने जे मातापिताना संयोगे करी गर्भने विषे उत्पन्न थाय ठे, एवा मनुष्य तथा तिर्यच, जे गर्भज जातिना होय, तथा नारकी कुंज्रीमां उपजे ठे, अने देवता उत्पादशय्यामां उपजे ठे, पण मातापिताना संयोगे गर्भमां उपजता नथी, तोपण देवता अने नारकी संज्ञी

मान व माया व लोभ, अप्रत्याख्यातावरणी क्रोध व मान
 व माया व लोभ, प्रत्याख्यातावरणी व मान व माया व लोभ
 सज्वलन क्रोध व मान व माया व लोभ । इस प्रकार १६
 भेद हैं ।

प्राणापुत्रधी— यह है जिनके उदय में अनन्त ममता
 का बंध हो, याने पत्नी गुम्मा व गरूर वगरह होना कि जो
 तथियत न कभा दुःख हो ।

अप्रत्याख्यातावरणा - यह है जिनके उदय में पत्नी गुम्मा,
 गरूर, लान्छ व मायाचार होता कि जिसमें गृहस्था के
 धर्म व तायक थायक व १२ वत पालन व भाव नहीं हो ।

प्रत्याख्यातावरणी— यह है जिनके उदय से पत्नी क्राधादि
 होता कि गुणियों व व्रत का नहीं पाल सके ।

संपत्ता— यह है जिनके उदय में पत्नी क्रोधादि होना
 कि शपा पूण शूर स्वभाव में गरावर लीन न रह सके ।

यह २५ भेद चाग्निप्रमाहता के श्री ३ भेद दशम माहती
 क मिला कर कुल २८ भेद माहता कम व है ।

अथ यह माहता कम किन किन याता से शाश्वत रूप
 होता है इसका विचार करना चाहिये ।

भाइया । श्रावमाहती कम क कारण यह है—(१) वरणी
 (जा ४ चातिया कर्मों का ताप कर केयम शा हासिग करके
 ताननाथ व अलाक को जात कर निराशुत हा गए) को
 तिदा करनी या अत्र दाप लगाता । (२) जैत शास्त्र (जा कि

बने ठे, एवा मननो जे व्यापार ते ठहुं मनोबल-
रूप प्राण जाणवो. ज्ञाषापर्याप्ति नामकर्मना
उद्यथी ज्ञाषायोग्य पुद्गलवर्गणा काययोगे ग्रहण
करी ज्ञाषापणे परिणमावी अवलंबीने वचन-
योगवडे ठोरुवानी जे शक्ति ते सातमुं वचनबल-
रूप प्राण जाणवो, शरीरनो जे व्यापार (शक्ति)
ते कायबलरूप आठमो प्राण जाणवो उच्च्वास-
नामकर्मवडे अने उच्च्वासपर्याप्तिवडे श्वासोच्छ्वास
योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहण करी श्वासोच्छ्वासपणे
परिणमावी अवलंबीने छोरुवानी जे शक्ति, ते
श्वासोच्छ्वासरूप नवमो प्राण जाणवो. जेनावडे
जीव कोइपण जवमां अमुक काळसुधी टकी
शके, अथवा परजवमां अवश्य जइ शके, विव-
क्षित जवमां जेटलो काळ रहे ते आयुः कहे-

दयामयी उपदेश से भगा है) की निन्दा करना यानी झूठा दोष लगाना । (३) संघ (मुनियों के संघ) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना । (४) देव (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्प-वासी) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना याने कहना कि झगभङ्गी हैं । (५) धर्म (दयामयी धर्म) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना ।

इन ५ बातों की तरफ मन बच काय चलने से तथा अन्य पदार्थों के सच्चे स्वरूप को मिथ्या कहने और मानने से दर्शन मोहनी कर्म का आश्रव हाता है ।

कषाय [क्रोध, मान, माया, लोभ] के होने से जो परिणाम में तेजी होना और इसी कारण वचन भी तेज निकालना व शरीर से भी खोटे आचरण करना, इनसे चारित्र्य मोहनी के कषाय वेदनी कर्म का आश्रव होता है । इसी तरह नोकषाय वेदनी का आश्रव इस भाँति है कि दीन दुःखी की हँसी करने व वैमतलव बकने से हास्य का (१) योग्य काम को मना नहीं करने व दूसरे की पीड़ा को दूर करने इत्यादि से रति का (२), खाटी क्रिया में उत्साह, दूसरे को पीड़ा देने, व पापी की संगति करने से अरति का (३), आप रंज में रहने तथा दूसरों को रंज देने तथा दूसरे का रंज देख कर खुश होने से शोक का (४), आप भय में रहना व दूसरे को डर दिखलाना व निर्दई होकर दुःख देने से भय का (५), दूसरे की बुराई करने व अच्छे आचरणवाले से घृणा (नफरत) करने से जुगुप्सा का (६), अतिकाम—तीव्रता से

हवे अजीवतत्त्वमुं वर्णन करतां प्रथम अजीवतत्त्वना चौद जेद कहे छे-

धम्माऽधम्माऽगासा, तियतियजेया
तहेव अश्चा य ॥ खंधा देस पएसा,
परमाणु अजीव चउदसहा ॥ ७ ॥

गाथा ७ मीना वृटा शब्दना अर्थ.

धम्मा-धर्मास्तिकाय.

अधम्मा-अधर्मास्तिकाय.

आगासा-आकाशास्तिकाय.

तियतिय त्रण त्रण.

भेया-भेदो.

तहेव-तेमज.

अद्धा-काल.

य-अने.

खंधा-खंध.

देस-देश.

पएसा-प्रदेश.

परमाणु-परमाणु.

अजीव-अजीवतत्त्व.

चउदसहा-चौद.

विस्तारार्थः—(धम्माधम्मागासा के०) धर्मा-धर्माकाशाः, एट्ठे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, ए त्रण द्रव्य खंध, देश तथा प्रदेश एवा (तियतियजेया के०) त्रित्रिजेदाः त्रण

परस्त्री का आदर तथा रागभाय करने व सेवने तथा स्त्री के सभाय अलिंगनादि के करने से स्त्री (वेदका) (७), थोडा क्रोध तथा कम लोभ, स्त्री सम्बन्ध में अपराग अपनी स्त्री में सतोष करने, ईर्ष्या का अभाव तथा स्नान, गन्ध, पुष्पमाला, आभराणों से अनादर इत्यादि हाने पुरुष वेदका (८), चारकपाय की तजा से तथा गुह्य इष्टी के छुदन से, स्त्री पुरुष के काम के अंग छोड़ अन्य अंगों में व्यसनापने से, शीलघत व व्रता को उपसर्ग दन से, परस्त्री के सग के निमित्त तीव्र राग करने से नपुंसक वेद (९) का आश्रय होता है।

भाइयो ! इस प्रकार मोहनी कर्म के भेद जान कर यह उद्यम करना चाहिये कि जिसमें हमारा मोह सासारिक पदार्थों में विशेष त राग कर अपन जीव उद्धार की ओर रागे ओर हमको बहुत से वैमतेल्य कामों में अपना धन व मिहगत व समय उपाद करना न हो। हम देखते हैं कि हमारे जैनी भाई भी बिलकुल जेमान के उपदेश के विरुद्ध चलकर सासारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये बुद्धेव जेस शीतला, देवी, भवानी, भैरा यक्षपाल आदि को मानते तथा सरार में आशक्त विषयों में प्रीतिधारक भिक्षुओं को भोजन देते व ब्रह्म की ओर से विमुक्त केवल ब्राह्मण जाति धारी विषय तीन ब्राह्मणों को दान देने से अपना भता होना मानते ह।

भाइयो ! क्या कहा जाय ! हमारे जैनी भाई इसी मोहनी कर्म के फदों में ऐसे उलझ हुए हैं, भूठ बोलन से डरते नहीं, दूसरे का माल हजम करन में शक्ता करत नहीं, दूध द्रव्य के गटक जाने में कुछ पाप समझने नहीं, घालकों को

समूह (खंधा के०) स्कंधाः, एटले खंध कहेवाय ठे. खंधनो केटलोएक जाग जेनो खंधनी साथे संबंध होय, ते (दिस के०) देशाः, एटले देश कहेवाय ठे. जेनी खंधनी साथे निर्विजाज्य कटपना करी, ठतां खंधनी साथे अजिन्न संबंध होय, ते (पएसा के०) प्रदेशाः, एटले प्रदेश कहेवाय ठे, अने तेज प्रदेश जो खंधथी जिन्न थाय, एवां निर्विजाज्य जाग एटले जेना केवलीनी बुद्धिए, एक जागना वे जाग थइ शके नहीं, ते (परमाणु के०) परमाणवः, एटले परमाणु कहेवाय ठे. ए रीते ए पुद्गलास्तिकाय द्रव्यना चार जेद, ते पूर्वोक्त दश जेदो साथे मेलवतां (अजीव के०) अजीवः, एटले अजीवतत्त्व (चउदसहा के०) चतुर्दशधा, एटले चौद जेदे थाय ॥ ७ ॥

अजीवतत्त्वना पांच मूल जेद तथा तेनां लक्षण (स्वभाव) वे गाथाए करी कहे ठे—

छोटी उमर में विवाह कर उनको मिट्टी के गिल्लोने समझ कर तमाशा देखने में आनन्द मानते, तथा उनको विद्या रत्न से विभूषित करने की परवा रखते नहीं, अपने समय को चमत्त्व चौर सतरज आदि में खोने से कुछ दोष मानते नहीं, अपने भाइयों को दिन पर दिन हीन हीन देख कर उनके सुधार व सुख के लिये प्रयत्न करते नहीं, जैन जाति की उद्धार करनेवाली भारत जैन महामंडल से वैपरवाह रह कर उसका सहायता देने नहीं, व्यापार की वृद्धि न्याय और सत्य से होता है उस पर, ध्यान रखते नहीं। विशेष क्या कहिये, उत्तम मनुष्य कुली कहला करके भी साधारण मनुष्य भी होने की इच्छा रखते नहीं। भाइयो ! मोह छोड़ो। यह महा दुःखदाई है। इसको संगति से जावों ने त्रास पाई है। जिन्होंने इस मोह के साथ बुराई की है उन्हींने व्यापार, धन, मान्यता, देशापकार, जीव विचार आदि में उन्नति पाई है।

अध्याय नवां ।

५—आयुर्कर्म

आयुर्कर्म—वह कर्म है जिसके कारण यह जीव इस संसार में नाना प्रकार की योनियों में जा शरीर में निवास कर भ्रमण करता हुआ कालक्षेप करता है।

इसके मुख्य ४ भेद हैं—नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव।
(१) जिसके कारण नरक में पैदा होकर नारकी के शरीर को

गाथा १० मीना तूटा शब्दना अर्थ.

अवगाहो-अवकाश (स्वभाव- गुण).	खंधा-खंध. देस-देश.
आगासं-आकाशास्तिकाय.	पएसा-प्रदेश.
पुगल-पुद्गलने.	परमाणु-परमाणु.
जीवाण-जीवने.	चेव-निधे.
पुगला-पुद्गलद्रव्य.	नायव्वा-जाणवा योग्य.
चउहा-चार प्रकारे.	

विस्तारार्थः—(धम्माधम्मा के०) धर्माधिर्मा, एटले
 धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, (पुगल के०)
 पुगलः एटले पुगलास्तिकाय, (नह के०) नजः,
 एटले आकाशास्तिकाय अने (कालो के०) कालः
 एटले काल, ए (पंच के०) पंच, एटले पांच
 (अज्जीवा के०) अजीवाः, एटले अजीवद्रव्य
 (हुंति के०) जवंति, एटले ठे. ए पांचनी साथे
 जीवद्रव्य जेदयाथी परुद्रव्य कहेवाय ठे.

धारण करे सा नरक आयु है। (२) एकैत्री वृक्षादि जीव में लेकर पचेद्री पशु पक्षी पर्यंत जलचर, थलचर, नभचर, आदि योनियों में रहने का कारण सो तिर्यंच आयु है। (३) मनुष्य भव में रहने का कारण सो मनुष्य आयु है। (४) देव की यानि में रहने का कारण सा देव आयु है।

यह जीव, अपने ही रागादि भावों के द्वारा अपने ही आत्मा पर पड़े हुए कर्म रूपी सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के द्वारा अन्य सूक्ष्म परमाणुओं के आकर्षित किये जाने पर इन्हीं को शक्ति से प्रेरित हुआ स्वयं कभी नारकी, कभी तिर्यंच, कभी मनुष्य कभी देव हो जाता है, अर्थात् ससार को चार विशेष गतियों में भरण किया करता है।

इस आयुक्रम के जीव के साथ सम्बन्धित होने के कौन कौन से कारण हैं इनका भी जानना आवश्यक है, अथ प्रथम नरक आयु रूपा कर्मों के आश्रय का कारण कहते हैं। बहुत आरम्भ करना और परिग्रह में बहुत ममत्वं करना सो नरक आयु के आश्रय के कारण हैं। प्रयाजित यह कि जिन जातों के एने परिणाम रहते हैं कि हम अपना पास धन, धरती, आदि पदार्थों का खूब बढ़ावें, चाहे वह धन, धरती आदि पदार्थ अचाय चारी मायाचारी, भूठ आदि उपायों से प्राप्त हों, अथ का चाहे सर्वस्व जाता रहे हमें ता लाभ दा जाय, कृष्णजश्या के रंग के भाव जिनके होत हैं उनको अवश्य नरक गति प्राप्त हाता है। जो जीवों के घान, भूठ चांगे और परिग्रह में बहुत खूब होत हैं ऐसे राद्गध्याना जात्र नरक ही के पात्र हैं। नरकगति में पड़े हुए जीवों को कितना घ किम्ब

प्रदेशी ठे, जे लदासीन वृत्ति होय, तेने अपेक्षा कारण कहे ठे. (अ के०) चकार पादपूरणार्थ उन्नयान्वयी अव्यय ठे ॥ ए ॥

जे लोकालोकव्यापी शब्द, रूप, रस, गंध तथा स्पर्श रहित अरूपी अनंत प्रदेशी अने साकर ने दूधनी पेठे जेनो (अवगाहो के०) अवकाशः, एटले अवकाश स्वभावगुण ते (आगासं के०) आकाशं, एटले आकाशास्तिकाय कहेवाय. अर्थात् एक प्रदेशी वीजा प्रदेशमां जतां जे अवकाशने आपे, तेने आकाशद्रव्य कहीए. तेना वे जेद ठे, एक लोकाकाश, वीजो अलोकाकाश, ए विशेषता ठे. अहीं कोइ आशंका करे, के अवकाश कोने आपे ठे ? तेनो उत्तर ए ठे के (पुगलजीवाण के०) पुगलजीवानां, एटले पुगल (पूरणगलणधर्मयुक्त-परमाणु) तथा

प्रकार का दुःख होता है, इसका चर्चन यहां पर न कर केवल इतना कह देनाही बस होगा कि असहाय और छोटे छोटे पशु पक्षियों को जो कुछ दुःख आप अपनी आंख के सामने देखते हैं, इसमें करांड गुना दुःख नारकियों का कहा जाय तो अन्युक्ति नहीं होगी। कम के परमाणुओं के बल से यह आत्मा जिसका कि अपना स्वभाव ऊंचे जाने का है, नीचे को ओर जाकर जन्म लेता है। जैसे आग को लो, जिस का स्वभाव ऊंचे जाने का है, पवन के बल के कारण इधर उधर का गमन करती है।

तिर्यच् आयु के आश्रव का कारण मायाचार करना है, अर्थात् जा जोव धर्म के उपदेशक अपने को प्रकट करके अपने जानी मतलब को लिये हुए उपदेश कर दूसरों को झूठे मार्ग पर लगाकर अनर्थ कराते हैं, ऐसे जीव पशु-पर्याय पाते हैं। जा दूसरे को झूठा दोष लगा कर उसका अपमान करके अपने में नही हाते गुणों का प्रकट कर अपना मान चाहते हैं, ऐसे कपोतलेश्या के रंग के परिणामवाले जीव पशुगति के पात्र हैं। जो जीव अपनी किसी अच्छी चेतन व अचेतन जीव के बिलुडने पर शोक करते हैं, व बुरी चेतन व अचेतन चीज के पास रहते हुए रंज किया करते हैं, व आप रोगी हांकर उस रोग के कारण उपाय तो नहीं बलिक सोच किया करते हैं, व जिन जीवों की इच्छाएं यह रहती हैं कि हमे मरने के बाद खूब धन सम्पदावाली पर्याय प्राप्त हो, हम राजा महाराजा होकर खूब धन उड़ावें, ऐसे आर्त्तध्यानी जीव पशुगति में आकर भूख,

गाथा ११ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

सह-शब्द.

अंधयार-अंधकार.

उज्जोअ-उद्योत, प्रकाश.

पभा-प्रभा, ज्योति.

छाया-छाया, कांति.

तवेहि-आतप.

आ-वा, अथवा.

वण-वर्ण.

गंध-गंध.

रसा-रस.

फासा-स्पर्श.

पुग्गलाणं-पुद्गलानुं.

तु-निश्चयपणे.

लख्खणं-लक्षण

विस्तारार्थः-सहंधयारउज्जोअप्रज्ञाढायातवे-
हि के०) शब्दांधकारोद्योतप्रज्ञाढायातपैः, एटले
सचित्त, अचित्त अने मिश्र, एत्रण प्रकारमांना
गमे ते प्रकारनो शब्द तथा अंधकार, तथा रत्त
प्रमुखनो, प्रकाश, तथा चंद्रमा प्रमुखनी ज्योति
तथा ढाया (जलदर्पणादिमां ज्ञासतुं प्रतिविंब
अने सूर्य प्रमुखनो आतप, आ वस्तुओ वडे
पुज्जल ओळखाय ठे. (आ के०) वा, एटले बीजा
नीचला पदार्थ पण जाणवा. (वणगंधरसा के०)
वर्णगंधरसाः एटले कृष्ण पीतादि वर्ण, गंध,

प्यास गरमी, सरदा, घात आदि को ऐसी ऐसी वेदनाएँ सहते हैं कि हम उनका यदि विचार करें तो शरीर का रोंया रोंया काँप उठे। कमों की प्रेरणा से यह जीव स्वयं कभी घृत्त होता है, कभी भाग, कभी चोटी, कभी हाथी कभी सिंह, कभी शकरी, गाय आदि हाता है। निश्चय से अपने परिणाम ही अपने को दुखदाइ हैं।

मनुष्य आयु में जाने के कारण यह है—

जो जीव थोड़ा आरम्भ मतलब भर करे ही से व थोड़ा मतलब भर परिग्रह (सामान) के धरोही से सतोपी रहते हैं जिनके चित्त दया भाव से भाजे हुए अयाय स डरते हैं, तथा जो दूसरे का घुरा नहीं चाहते हैं, ससार स भी जिनके बहुत प्राणि नहीं हाता, दान, पूजा आदिक में जिनके भाव विशेष लवलीन हाते हैं, ऐस धर्मध्यानी जाव मनुष्य आयु का प्राप्त करते हैं और जिनके चित्त कामल होते हैं दिल में जरा सा भी मान जिनके नहीं हाता, ऐस विचारवान प्राणी मनुष्य आयु का आध्वय करत हैं।

द्वय आयु के आध्वय के कारण इस भाति है—जा महावृत्ती योगी की दशा को धारण कर आत्म ध्यान करत है व जो गृहस्थ धायक व्रतशाल को पालत है और अन्त में सयास लेते हैं ऐस जीव अवश्य द्यर्गात पात हैं। अथवा जा किसी दूसरे के भय स व लाचार ही भूख प्यास ग्राटे रचन व गर्मा सर्दी को बाधा सहते हैं आर परिणाम जिनके कमल हाते हैं, ऐस अकाम निजरायाल जीव भा छ्पाटी जाति व द्य हाते हैं जो अब्राने नप करतें हैं अधान् आत्मा का नहीं जान

गाथा १२ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

एगाकोडि—एक क्रोड.

सतसष्टि—सडमठ.

लख्खा—लाख.

सत्तहुत्तरी—सत्तयोतेर.

सहस्सा—हजार.

य—अने.

दो थ सया—वसें

सोलहिया—सोल अधिक.

आवलिया—आवलिका.

इग—एक.

मुहुत्तम्मि—मुहुत्तमां.

विस्तारार्थः—(एगा कोरि के०) एका कोटिः
 एटले एक क्रोरु, (सतसष्टि लख्का के०) सतषष्टि
 लक्षाणि, एटले सरुसठ लाख, (सत्तहुत्तरि स-
 हस्सा के०) सतसततिः सहस्राणि, एटले सत्तयो-
 तेर हजार, (दो थ सया के०) द्वे, च शते, एटले
 वसें अने (सोलहिया के०) षोरुशाधिके, एटले
 सोल उपर, एटली (आवलिया के०) आवलि-
 काः, एटले आवलिकाओ (इगमुहुत्तम्मि के०)
 एक मुहुत्ते, एटले एक मुहुत्तमां थाय ठे. (यके०)
 चकार पादपूरणार्थ उचयान्वयी अव्यय ठे. हवे

कर व भावों की शुद्धता को न पहिचान कर शरीर को तरह तरह कष्ट देते हैं इस निश्चय से कि इसके बाद अच्छी गति होगी, ऐसे जीव भी मर कर नीच जाति के देव होते हैं। जो जीव सम्यग्दृष्टी होते अर्थात् जिनके आपा पर का अच्छी तरह ज्ञान और निश्चय होता है, ऐसे जीव स्वर्गवासी देवही होते हैं। भोगभूमि के पैदा होने वाले मनुष्य जो शील और व्रत नहीं पालते हैं अपने सरल स्वभाव के कारण देवगति में गमन करते हैं। देवगति में इन्द्रियाधीन सुख की बाहुल्यता है तौ भी उस स्थान में मनसम्बन्धी अनेक दुख हैं, जैसे ईर्ष्या, द्वेष, अपमानादिक। भाइयों ! यहां संक्षेप में चारो आयु में जीवों को रखनेवाले कर्मों के आश्रव का वर्णन किया है। विशेष जानने की इच्छा करनेवालो को श्री सर्वार्थसिद्धि जी को भले प्रकार पढ़ना चाहिये। प्रयोजन कहने का यह है कि मनुष्य भव पाकर हमको वह कर्तव्य करने योग्य है जिनसे हमारी अवस्था दिन पर दिन उच्च होती चली जाय। क्योंकि जीवन संसार में थोड़ा है। इस थोड़ी सी आयु पाकर यदि हमने अपने आत्मा का निर्मल करने के यत्न नहीं किये अर्थात् संसार से मुक्ति पाने की चण्टा नहीं की तो फिर हमारा सुधार कैसे हांगा। यह मनन कदाचित जीवों की अज्ञानता में देव जाय और हम बाबले की तरह कर्मरूपी नशे से प्रेरे हुये संसार बन के चारों मार्गों की अनेक गलियों में भटक रहे व इस भयानक बन से निकलने का मार्ग कभी नहीं पावें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु यदि इस संसार बन में धीरे धीरे सोचते विचार करते कदम रख रख कर, इस बन की माहती वस्तुओं से मोह न करते हुये, न

आवली कहे ठे. एवी वसें ने ठप्पन आवलीए एक कुल्लक जव थाय ठे. ए करतां बीजा कोइ पण नाना जवनी कटपना थइ शके नहीं. एवा कांइक अधिक सत्तर कुल्लक जवमां एक श्वासो-ह्वासरूप प्राणनी उत्पत्ति होय ठे. एवा सात प्राणोत्पत्ति कालने एक स्तोक कहे ठे. एवा सात स्तोकसमये एक लव थाय ठे एवा सत्योतेर लवे वे घनीरूप एक मुहूर्त्त थाय ठे. ते एक मुहूर्त्तने विषे पूर्वोक्त १६७७७२१६ आवली होय ठे ॥११॥

हवे वृद्धि पामता व्यवहार कालना प्रकार कहे ठे.

समयाऽवली मुहुत्ता, दीहा पस्का य
मास वरिसा य ॥ जणिउं पलिआ
सागर, उस्सप्पिणी सप्पिणी कालो १३

संसार में भयदायक वस्तुओं से डरते हुए, साहस की कमर बाध सीधे मार्ग पर चल जायेंगे तो निस्सन्देह इस घन से निकल कर अपना घर जो मुक्ति है उसको प्राप्त करेंगे। भाइयो ! ध्यान दीजिये।

अध्याय दमवां

६—नामकर्म

नाम कर्म वह कर्म है जिसके उदय होने से तरह तरह का शरीर, घ उसके अंग घनते हैं—अर्थात् इस उदय क वश से तरह तरह को ऐसा अवस्थाएँ हा जाता हैं जिनसे जीवात्मा एक प्रकार का पर्याय सज्ञा में गिरा जात है। जैसे यह घांटा है लूला है, अंग है, बहिरा है, इत्यादि।

नाम कर्म की ६३ प्रकृति है—

४ गति—जिन्के दय से जीवात्मा एक जन्म से दूसरे जन्म का जाय सः गति १-४ तियच, मनुष्य दय ऐसा चार है। [नोट—दुसरा जन्म धारण करने में आनु क साथ नाम कर्म भा सहायक हाता है।]

५ जाति—जिनके उदय से इस जीवात्मा के १ इट्टी घ २ इट्टी घ ३ इट्टी घ ४ इट्टी घ ५ इट्टी शरीर में पैदा हों।

५ प्रकार का शरीर—पुद्गल (Matter) के जिस तरह के परमाणुओं से शरीर बनता है उसके पाच भेद हैं।

(क) शौदारिक—जा शरीर अपनी माता के गूँत और पिता के वायु से गर्भ में घाता है उस गभज कहते हैं और

उत्सर्पिणी अने (सर्पिणी के०) अवसर्पिणी, ते
 अवसर्पिणी, ए सर्व (कालो के०) कालः, एटले
 काल (जणित्तो के०) जणित्तः, कहेवाय ठे. ते-
 ओमां अनुक्रमे वृद्धिनुं प्रमाण बतावे ठे. अति
 सूक्ष्म कालने समय कहे ठे, असंख्याता समय-
 नी एक आवली आय ठे, एवी (१६७७७२१६)
 आवलीए एक मुहूर्त्त आय ठे, त्रीश मुहूर्त्त एक
 अहोरात्रिरूप दिवस आय ठे. पंदर अहोरात्रिए
 पखवाकीयुं आय ठे. वे पखवाकीये एक महीना
 आय ठे. वार महीने एक वर्ष आय ठे. तेमज
 असंख्याता वर्षे एक पद्योपम आय, तेवा दश
 कोनाकोनी पद्योपमे एक सागरोपम आय, तेवा
 दश कोनाकोनी सागरोपमे एक उत्सर्पिणी अने
 बीजा दश कोनाकोनी सागरोपमे एक अवस-
 र्पिणी आय. ए वे महीने बीश कोनाकोनी सा-
 गरोपमे एक कालचक्र आय, एवा अनंता काल

जो गर्मी, सरसो, आग, पानी, मिट्टी आदि वस्तुओं के संयोग से तरह तरह के लट, जूयें आदिकों के शरीर बनते हैं उसे सन्मूर्द्धन कहते हैं। यह दोनों तरह के शरीर औदारिक कहलाते हैं।

(ख) वैक्रयक—देव व नारकियों के शरीर जिस तरह के परमाणुओं से बनते हैं उसे बैक्रयक कहने हैं, अर्थात् इनमें सकुड़ जाने, फैलजाने, आदि की शक्ति होती है, तथा यह परमाणु पारे की तरह भिन्न हो जाने पर भां शीघ्र मिल जाते हैं।

(ग) आहारक—एक प्रकार का बहुत ही महीन पुद्गल के परमाणुओं का शरीर जो ऋद्धिधारी मुनि के मस्तक से निकलता है और केवल ज्ञानी के चरणों को छू कर लौट आता है, इसके जानने आने में कुछ समय लगते हैं। जब मुनि को कोई भारी संदेह होता है तब वह ऐसा करते हैं।

(घ) तैजस—यह बहुत ही महीन तेज रूप परमाणु हैं जो ऋ ससार के सब जीवों के साथ सदा रहते हैं और इनका वेग किसी किसी ऋद्धिधारी मुनि में प्रकट हो जाता है, अर्थात् जब मुनि के चित्त में अधिक दया आती है तो दाहने कन्धे से यह तैजस शरीर निकल कर बहुत शीघ्र उनके बिचारे हुए क्षेत्र में भ्रमण कर लौट आता है और उतने स्थान के रोगादि का शांत कर देता है। इसी प्रकार जब किसी मुनि के क्रोध का आग भड़क उठती है और वह चित्तमें जिनसे क्रोध हुआ उनका नाश बिचारते हैं, तब बायें कन्धे से एक तेजका पुंज निकलता है और वह उनको भस्म कर मुनि को

गाथा १४ मीना वृटा शब्दना अर्थ.

परिणामि-परिणामि.

जीव-जीव.

मुत्तं-मूर्त्तिमंत.

सपएसा-सप्रदेगी.

एग-एक.

खित्त-क्षेत्र.

किरिआ-सक्रिय.

य-अने,

णिच्च-नित्य.

कारण-कारण.

कत्ता-कर्त्ता.

सव्वगय-सर्वगत.

इयर-इतर (असर्वगत).

अप्पवेसे-प्रवेश रहित.

विस्तारार्थः—ठ द्रव्यमां जीव अने पुज्जल, ए
वे द्रव्य (परिणामि के०) परिणामिनौ, एटले
परिणामि (एटले एक अवस्था ठोमी वीजी अ-
वस्थामां चवारूप परिणामवाळा) हो तेमां गतिं
इंद्रियं, कषायं, लेइयां, योगं, उपयोगं, ज्ञानं,
दर्शनं, चारीत्रं वेदं एम दश परिणाम जीवना
अने वंधन, गति, संस्थान, जेद, वर्ण, गंध, रस,
स्पर्श, अगुरुत्वधु अने शब्द, ए दश परिणाम
पुज्जना ठे. चाकीनां चार द्रव्य अपरिणामी ठे.

भी भस्म कर देता है। इस तेजस शरीर को विद्युत शरीर के समान कहा जा सकता है।

(ख) कार्माण एक प्रकार के बहुत ही महीन पुद्गल के परमाणु—जाकि आत्माके साथ एक सूक्ष्म शरीर बनाये हुये सत्तार अवस्था में सदा साथ रहते हैं। इन परमाणुओं की कर्म सत्ता हैं। भावों के कारण इनका मेल होता है और यह जीवात्मा क साथ रहते हुय समय समय पर अपना शरिर दिखलाया करते हैं जिससे मोहवान जीव सुख तथा दुःख अनुभव करते हैं।

३ अगोपाग—जिनके उदय से अग व उसके भाग बने, जैसे शरीर के आँख, नाक आदि। आदायिक उक्तयक, आहारक इन तीन प्रकार के शरीर ही के अगोपाग हात है।

२ निर्माण—जिसके उदय से आँख, नाक कान आदि यथा स्थान होयें सा म्यान निर्माण तथा जिसके उदय से किसी प्रमाण रूप हाव सा प्रमाण निर्माण।

५ बन्धन—जिनके उदय से पाच प्रकार के पुद्गल परमाणुओं का परस्पर अपने अपने शरीर रूप बना हाय।

५ सघात—जिन्के उदय से पाच प्रकार के शरीर रूप पुद्गल के परमाणु आपस में अपने अपने शरीर रूप एकसार मिल जाय।

६ सम्भान—जिन्के उदय से शरीर का आकार [डील डौल] बन। इसके ६ भेद यह हैं—

[क] समचतुर सस्थान—आँख, नाक, कान, मुह, हाथ पैर का आकार मुनासिब सुन्दर बनना।

धर्म, अधर्म, आकाश अने काल, ए चार द्रव्य (णिञ्चं के०) नित्याः, एटले सदा एक अवस्थामां रहेवारूप नित्य ठे, वाकीनां वे अनित्य ठे. यद्यपि उत्पाद, व्यय अने ध्रुवपणे सर्व पदार्थ नित्यानित्यपणे परिणमे ठै, तथापि धर्मादिक चार द्रव्य सदा अवस्थित, माटे नित्य कहां. ठ द्रव्यमां धर्मादिक पांच द्रव्य (कारण के०) कारणानि, एटले कारण छे. एक जीवद्रव्य अकारणरूप छे. ठ द्रव्यमां एक जीवद्रव्य (कर्ता के०) कर्ता, एटले कर्ता छे, बीजा पांच अकर्ता छे. ठ द्रव्यमां एक आकाश (सर्वगत के०) सर्वगतं, एटले सर्वगत छे, अने बीजां पांच द्रव्य मात्र लोकव्यापी छे, माटे असर्वगत जाणवां. तथा यद्यपि ठ द्रव्य क्षीर नीर परे परस्पर अवगाह ठे, तथापि (इयरअप्पवेसे के०) इतराप्रवेशाः, एटले एक बीजामां अरस्परस प्रवेश रहित

[ख] न्यग्रोध परिमंडल संस्थान—शरीर का आकार ऊपर बड़ा और नीचे छोटा हो। जैसे बड़ वृक्ष।

[ग] खातिक संस्थान—शरीर का आकार नीचे चौड़ा ऊपर सकुब्जक।

[घ] कुब्जक संस्थान-पीठ—बीच में बड़ी ऊपर नीचे हल्की हो। इसको कुबड़ापन भी कहते हैं।

[च] वामन संस्थान—हाथ पैर छोटे हों उदर मस्तक बड़ा हो अर्थात् व्रीणापन हो।

[छ] हुडक संस्थान—शरीर के सब अंग उपर नीचे ऊंचे बँढगे हों।

६ संहनन—जिनके उदय से हाड़ों का विशेष बंधन हो। यह भी ६ प्रकार का है—

[क] वजू ऋषभ नाराच संहनन—जिस शरीर में संहनन कहिये हाड़, ऋषभ कहिये नश के वेठन, नाराच कहिये काले, यह तीनों वजूमय कठोर हों।

[ख] वजू नाराच संहनन—जिसमें हाड़ और कीले वजूमय हों पर नश के बन्धन वजूमय न हों।

[ग] नाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि कीलों से कीलिन हों।

[घ] अर्धनाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में कीले आधे हों, एक तर्फ हों पर दूसरी ओर न हों।

[च] कीलक संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि छोटे कीलों से मिला हो।

[छ] असंप्राप्ताष्टपादिक संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में अन्तर [फरक] हो। चौगिरद बड़ी छोटों नस

धारवुं, पोषवुं तेने धर्म कहीए, अने (अस्ति के०) प्रदेश तेनो (काय के०) समूह, तेने धर्मास्ति-काय कहीए. तेमज २ गति क्रिया परिणत जीव तथा पुञ्जने अवष्टंजदानस्वप्नावलक्षण ते अ-धर्मास्तिकाय द्रव्य कहीए, तेमज ३ गति क्रिया परिणत जीव तथा पुञ्जने अवकाशदान लक्षण स्थिति अंतर्गत प्रविष्ट कीलकन्याये आकाशा-स्तिकाय द्रव्य जाणवुं. तथा ४ समस्त वस्तु समुदायनुं कलन-संख्यात अथवा समयावलि-कादिके करी सचेतनाचेतन पदार्थने जेणे करी कहीए, एटले जाणीए, एवुं अमूर्त्त लोकव्यापी वर्त्तनालक्षण असंख्य समयात्मक नैश्चयिक स-मय लोकव्यापी अनंत समयात्मक कालद्रव्य जाणवुं. तथा ५ पूर्ण गलन स्वप्नाव ते पुद्गल अनंत अणुस्कंध पर्यंत जे परमाण्वादिक, ते कोइक द्रव्यथी गले, वियोग पामे, तथा स्वप्नाव

लिपटी हो, मात्सादिक से छुई हो। यह सब सहनन मनुष्य और तिर्यच के होते हैं, देवनाराकियों के नहीं, क्योंकि उनके हाड नहीं होते हैं।

(६) स्पर्श—जिनके उदय से शरीर के स्पर्श [छूने] के गुण पैदा हों। यह २ प्रकार का है—ककश, फोमल, भारी, हलका, चिकना, रूखा, ठंडा, गरम।

५ रस—जिनके उदय से शरीर में रस पैदा हों। ये पाच प्रकार के हैं—तेज, कड़ुघा, मीठा, खट्टा, कपायला।

२ गंध—जिनके उदय से शरीर में गंध हो। यह दो प्रकार का है—एक सुगंध, एक दुर्गंध।

५ वर्ण—जिनके उदय से शरीर में रंग पैदा हो। यह पाच प्रकार का होता है—काला, नीला, सफेद, लाल, टरा।

४ आनुपूर्वा—जिनके उदय से आनुपूर्वी है। आनुपूर्वी का प्रयोग यह है कि भरण होने के पीछे जब तक यह शरीर जारण करने के लायक पुद्गल नहीं लेवे तब तक आत्मा का पहिले शरीर का सा आकार बना रहता है। यह आनुपूर्वा अग्रन्था अधिक से अधिक ३ समय तक रहती है। यह ४ गतिकी अपेक्षा ४ प्रकार की है। जैसे जोई मनुष्य मर कर देव गति को पाता हो तब जब तक देवमई पुद्गल नहीं लेवे तब तक धर्म सहित आत्मा का आकार मनुष्य शरीर के सदृश रहता सो देव गत्यानुपूर्वी है।

यह ६५ विध प्रकृति कहलाता है। अब आगे २२ अपिड प्रकृति बही जाती है।

ठे ? तेनुं समाधान करे ठे.

जीवद्रव्यने वर्तना, परिणाम, क्रिया, अने परावर्त्तादिक, ए सर्व कालव्यपदेशनाकू ठे, तेमां जे जीवने सादि सांतादि चार जेदे वर्त्तवुं, ते वर्त्तना जाणवी. तथा जे विश्वासाप्रयोगे जीवद्रव्यनी परिणति, ते परिणाम जाणवो. तथा जूत, ज्ञावि अने ज्ञविष्यत विशेषणवंत जीवने गमन स्थित्यादि कार्यनी चेष्टा, ते क्रिया जाणवी.

तथा पूर्वज्ञावि पश्चाद्ज्ञावी परापर इत्यादि यदाश्रये द्रव्यने कहेवुं, ते परापरत्व जाणवुं. ए प्रकारे वर्त्तनादिक सर्व द्रव्यना पर्याय ठे, ते सर्व कालव्यपदेशनाकू ठे, जे माटे कथंचितपणे द्रव्यथी अन्निन्न द्रव्यनामी पर्याय पण कहीए, ते माटे पर्यायने द्रव्यपणुं करतां अनवस्था प्रसंग थाय, माटे काल ते पृथक द्रव्य नहीं. वर्त्तना-द्यात्मक काल जीवाजीव द्रव्य पर्यायपणे मानवो.

१ अगुरुलघु—जिसके उदय से देह न लोहे के पिंड की तरह भारी हो और न आक की फफूंदी की तरह हलकी हो ।
[यहां अगुरुलघु जो द्रव्यका स्वभाव है उससे प्रयोजन नहीं]

१ स्वघात—जिसके उदय से अपने शरीर से आपका घात करे—जैसे बड़ा, सींग, लम्बा स्तन बड़ा पेट ।

१ परघात—जिसके उदय से ऐसा अंग हो जिससे दूसरे का घात हा । जैसे तीक्ष्ण सींग व नख, विच्छ्र का उद्ग आदि ।

१ आताप—जिसके उदय से आनापमय शरीर पावे । जैसे सूर्य के विमान में पृथ्वी कायिक जीव । इन जीवों को स्वयं धूप की गरमी नहीं मालूम होती जब कि दूसरों को बहुत आताप होता है ।

१ उद्योत—जिसके उदय से उद्योत रूप शरीर पावे । जैसे चन्द्र के विमान में पृथ्वी कायिक जीव ।

१ उग्वास—जिसके उदय से शासोश्वास आवे ।

१ विहायी गति—जिसके उदय से आकाश में गमन हो ।

२ प्रत्येक शरीर—जिसके उदय होने से एक आत्मा एक शरीर को भोगे ।

१ साधारण—जिसके उदय से बहुत जीव भोगने योग्य एक शरीर पावे ।

१ ब्रह्म—जिसके उदय से दो इन्द्री से पंचेन्द्री तक में उपजे ।

१ थायर—जिसके उदय से १ इन्द्री पैदा हो ।

१ सुभग—जिसके उदय से दूसरे को अच्छा मालूम हो ।

लिकादिक प्ररूपणा मात्र व्यवहार नयने मते ठे, अने निश्चय नयने मते कालने विशेष प्रदेशा-
 जाव ठे, ते माटे कालने विवे अस्तिकायपणुं क-
 हेवुं घटमान नथी, अने गुणना आश्रयमाटे
 द्रव्यपणुं घटमान ठे, “गुणाणमासजं दधं” इति
 वचनात् ते माटे द्रव्यथी वर्तनालक्षण अने का-
 लथी अनादि अनंत तथ क्षेत्रथी समग्र क्षेत्र-
 वर्ती अने जावथी रूपादि रहित अमूर्त्तिमंत अं-
 कादिक चारे व्यंगित समयादिके परमाणुनी परे
 अनुमेय एवुं काल नामा द्रव्य पृथकपणे मानवुं,
 एहीज आप्त वाक्य प्रमाण करवुं. इत्यादिक का-
 लद्रव्य संबन्धी विशेष विचार ग्रंथांतरे बहुश्रुत-
 ना मुखथी जाणी लेवो. ॥ इति प्रसंगागतकाल-
 द्रव्यविचारः समाप्तः ॥

हवे शिष्य पूढे ठे, के नवतत्त्वादिक सकल
 पदार्थने विषे जीवतत्त्वनी मुख्य प्ररूपणा कही.

१ दुर्भग—जिसके उदय स रुपादि सुन्दर गुण होने पर भी दूसरे को बुरा मालूम पड़े ।

१ सुस्वर—जिसके उदय से शब्द सुहावना निकले ।

१ दुस्वर—जिसके उदय से बुरा असुहावना शब्द निकले ।

१ शुभ—जिसके उदय से मुह, हाथ, पैर आदि शरीर के अंग सुन्दर हों ।

१ अशुभ—जिसके उदय से मस्तक मुख आदि असुन्दर [बवखूरत] हों ।

१ सूक्ष्म—जिसके उदय से पैसा महीन शरीर पावे जो जमीन, पहाड़, आग, जल, बपड़ा आदि में से होकर निकल जाय, सके नहीं ।

१ यादर—जिसके उदय से रुफने व रोकनवाला शरीर पावे ।

१ पर्याप्त—जिसके उदय से जिन पर्याप्त में जाय उसके अनुसार शरीर के भाग पूर्ण फलने की शक्ति पावे ।

१ अपर्याप्त—जिसके उदय स पर्याप्त सम्प्रभो शरीर के भागों को पूरा फलने की शक्ति न पावे वर पीन दो चढ़ा के भीतर भरणा कर जाय ।

१ मिथर—जिसके उदय से रस धातु उपधातु अपने अपने स्थान में दृढ़ हों ।

१ अमिथर—जिसके उदय स रसादि दृढ़ न हों ।

१ आद्य—जिसके उदय स प्रमाणात [चमकदार] शरीर हो ।

(९१)

ग्रहण कीधुं छे. त्यार पठी प्रतिप्राणीने प्रत्यक्ष सिद्ध चैतन्यनी अन्यथानुपपत्तिमाटे जीवास्तिकायनुं ग्रहण कीधुं ठे.

आशंका—धर्मास्तिकायादिक चार द्रव्यना देश अने प्रदेश ठे, परंतु परमाणु नथी, तो परमाणुने साथे ग्रहण कर्या तेनुं, कारण शुं ?

उत्तर:—मूलज्ञेदे अजीवना नव जेद ठे, तेमां चार अस्तिकाय द्रव्य, पांचमो खंध, ठठो देश, सातमो प्रदेश, अने आरुमो पुद्गलनो एक परमाणु तथा नवमुं कालद्रव्य ठे. माटे ते नव जेद देखाववा सारु परमाणु कह्यो.

आशंका—प्रदेश अने परमाणु ए वेउने निर्विज्ञागरूपपणुं ठे, माटे एमां शी विशेषता छे ?

उत्तर—जे स्कंधप्रतिवद्ध निर्विज्ञाग ज्ञाग ते प्रदेश, तथा जे एकाकी विकल्पित स्कंधपरिणाम रहित एवा लोकने विषे बूटा वर्रें ठे ते,

- १ अनादेय—जिसके उदय से प्रभारहित शरीर हो ।
- १ यशस्कीर्ति—जिसके उदय से गुण प्रकट हो ।
- १ अयशस्कीर्ति—जिसके उदय से अवगुण प्रकट हो ।
- १ तीर्थंकर—जिसके उदय से तीर्थंकर पद का शरीर हो ।

यह २८ अर्पिण्ड प्रकृति हैं—

सब मिलकर ६३ प्रकृति नाम कम की हैं। अब यह देखना चाहिये कि यह नाम कर्म क्यों कर संसारी जीवों के बंधते हैं कि जिनके उदय से ऊपर कही अवस्थायें भोगनी पड़ती हैं, क्योंकि यह "कर्म" का नियम कारण और कार्य के आधीन है। इसीको Cause and effect कहते हैं और इन कर्मों का बन्धन राग और द्वेष से होता है जैसा कि "Mr. C. W. Leadwater का कथन है।

"If a man has within him only pure, high, and unselfish desires and emotions, he will chiefly set into vibration the more refined matter of that astral body: if, on the contrary his desires, emotions and passions are coarser and selfish, almost the whole of them will express themselves in the lower, denser, grosser parts of that astral vehicle."

भावार्थ—अच्छे विचारों से शुभ और बुरे विचारों से अशुभ कर्म बँधते हैं। परन्तु यह कर्म समय समय पर उदय

हृदये पुण्यतत्त्वतुं वर्णन करतां पुण्य नव प्रकारे
बंधाय छे, अने वेंतालीश प्रकारे भोगवाय
छे, ते कहे छे.

सा-उच्चगोत्र-मणुदुग, सुरदुग-पंचे-
दिजाइ-पणदेहा ॥ आइतितणूणुवंगा,
आइम-संघयण-संठाणा ॥ १५ ॥

गाथा १५ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

सा-गातावेदनीय.

उच्चगोत्र-उच्चगोत्र.

मणुदुग-मनुष्यद्विक,

सुरदुग-सुरद्विक

पंचेदिजाइ-पंचेद्वि जाति.

पणदेहा-पांच शरीर.

आइ-आदिनां.

तितणूण-त्रण शरीर.

उवंगा-उपांग (अंगोपांग)

आइम-आदिम-पहेलुं.

संघयण-संघयण.

संठाणा-संस्थान.

विस्तारार्थः—साधु प्रमुखने पहेलुं अन्न दीधा-
श्री, वीजुं पाणी दीधाश्री, त्रीजुं रहेवाने स्थान
देवाश्री, चोशुं सूवाने पाट प्रमुख दीधाश्री, पांचमुं
पहेरवा अथवा उढवाने वस्त्र दीधाश्री, ठहुं ते

आकर अपना रस देते रहते हैं। इसीको कर्मफल कहते हैं। यही कर्मफल यदि राग द्वेष सहित भोगा जाता है तो आगामी कर्म बंधन का कारण हो जाता है। इस प्रकार समार के मोही जीव एक ओर से कर्म का उदय फल पाते हैं, दूसरी ओर कर्म बाधते जाते हैं जो कर्म उसी भव में व दूसरे व सरे भव में समयानुसार उदय में आकर रस देते हैं। यही "कारण और कार्य" का नियम समारी प्राणियों को सुख दुख का हेतु है।

नाम कम के आश्रय तथा बंध के कारण यह है। मन, वचन, और काय के कुटिल अर्थात् टेढ़े रखने से अशुभ नाम कर्म का आना होता है। जैसे मिथ्यात धरना चुगलों पाना, खाटी वस्तु अच्छी में मिला कर बेचना, छोटा वसम पाना, मद करना, नकल चिताना, दूसरे के वृत्त अग देख गुश होना आदि। इसी प्रकार मन वचन काम का सरल रखने से शुभ नाम कर्म का आश्रय होना है। जैसे धर्मात्मा को देख गुश होना, प्रमाद न करना आदि।

पाठक ! अपने परिणामों ही के आधीन हमारा भाग्य (Destiny) जाता है जिसको हम कहते हैं। इस लिये हमको अपने परिणाम निमल रखने चाहिये। तथा अन्धे, लून, कुयडे, काने आदि दोन से बचने के लिये हमको अपने बचन और काय की चेष्टा भी ठीक ठाक रखनी चाहिये।

तीर्थकर नाम कम बंध उस समय होता है जब सोलह

नाथ घालीने सीधो चलाववानी पेठे जेशी उप-
जवाने स्थानके पहोंची शकाय, तेने आनुपूर्वी
कहे ठे) ए (सुरद्रुग के०) सुरद्विकं, एटले सुर-
द्विकरूप नामकर्म कहेवाय. ७ जेना उदये पंचें-
द्रियपणुं प्राप्त थाय ठे, ते (पंचेंदिजाइ के०)
पंचेंद्रियजातिः, एटले पंचेंद्रिय जाति नामकर्म
कहेवाय. जेना उदये पांच शरीरनी प्राप्ति थाय
ठे, ते कहे ठे—८ जेशी औदारिक शरीरयोग्य
पुद्गल ग्रहण करीने तथा तेने शरीरपणे परि-
णमावीने जीव पोताना प्रदेशनी साथे मेलवे,
तेने औदारिक नामकर्म कहे ठे. एवी रीते सर्व
शरीरने विषे योजना करवी. ९ वैक्रिय शरीरना
वे जेद ठे. एक औपपातिक ते देवता तथा ना-
रकीने होय छे. वीजुं लब्धिप्रत्ययिक ते तिर्यच
तथा मनुष्य लब्धिवंतने होय छे. १० आहारक
शरीर ते चौद पूर्वधर मुनिराज तीर्थकरनी रुद्धि

कारण भावना का विचार किया जाता है। इन भावनाओं का वर्णन जैन शास्त्रों से देख कर मालूम कीजियेगा।

अध्याय ग्यारहवाँ

७—गोत्रकर्म ।

यह वह कर्म है जिसके उदय से यह जीवात्मा ऐसे कुल का संयोग पावे जिससे इसको दुःख की प्राप्ति हो। यह दो तरह का होता है।

१ उच्च गोत्र—अच्छे चरित्र वाले लोकमान्य कुल में जिसके उदय से जन्मे।

१ नीच गोत्र—खोटे आचरण वाले लोकनिन्द्य कुल में जिसके उदय से पैदा हो। जहाँ आपको भी हिंसा चारा आदि दुष्ट कर्म करने का समागम सहज में मिल जाय।

इस कर्म के आश्रय होकर आत्मा के साथ मिलने में नीचे लिखे कारण हैं।

१ परनिन्दा, आत्मप्रशंसा—दूसरे में श्रवणगुण हों वा न हों, परन्तु किसी अपने विषय के मतलब से दश आदमियों में उनको बुराई करनी और अपने में गुण हो वा न हों, किसी अपने विषय कषाय के मतलब (धनादि का लोभ) से दश आदमियों के सामने अपनी तारीफ़ करनी।

२ पर-सत-गुणाच्छादन आत्म असत्गुणाच्छादन—दूसरे में गुण होते हुए भी जाहिर न हो, ऐसी चाह व कोशिस

आहारक अंगोपांग, अने तेजस शरीर, तथा
 कार्मण शरीर, ए वने अंगोपांग नत्री, तेथी पहे-
 लां त्रण शरीरनांज अंगोपांग कहां ठे. ते (उवं-
 गा के०) उपांगानि, एटले अंग उपांग, तथा
 अंगोपांगरूप नामकर्म कहेवाय. (आश्मसंघयण-
 संठाणा के०) आदिमसंहननसंस्थाने एटले १६
 जेना उदयथी ठ संघयणमांनुं पहेलुं वज्ररूप-
 नाराच नामनुं संघयण प्राप्त थाय ठे, तेमां वज्र
 एटले खिली, रूपत्र एटले पाटो, तथा नाराच
 एटले वे पासा मर्कटबंध, ते उपर पाटो, ते उ-
 परे खिली एवो हारुनो निचय एटले समुदाय
 होय, ते अस्थिनिचयसंघयणरूप प्रथम संघयण
 कहेवाय. १७ जेना उदयथी पोते पर्यकासन करी
 वेठां ठतां समचतुरस्र-चारे वाजु सरखी आकृती
 थाय, अने पोताना अंगुल प्रमाणवडे एकसो ने
 आठ अंगुल प्रमाण शरीर जराय, तेने उत्तम

करना, अपने में अवगुण होते हुए अवगुणों के ढकने और न होते गुणों को प्रकट करने की चाह व कोशिस करना ।

इसके सिवाय अपनी जाति, कुल, रूप, धल विद्या का घमंड करना, दूसरे की हसी करना, व देव गुरु धर्म व अपन से बड़ों की विनय, सत्कार नहीं करनी, यह सब नीच गोत्र के आश्रय के कारण हैं ।

इसके विरुद्ध कारणों के होन से उच्च गोत्र रुपी कर्मों का आश्रय होता है । जैसे दूसरे के गुणों की विनय व प्रशंसा, अपन में गुण होते हुए भी विनय व प्रशंसा नहीं चाहना, जैसे भस्म के तीचे द्यो अग्नि रहनी हैं । इस तरह रह कर अपने घडप्पन को अपने से प्रकट न करना ।

अध्याय चारहवां

८—अंतराय कर्म ।

यह घट्ट कर्म है जिम्मे उदय आनामे मनते व सोचे हुए काम में विघ्न व विगाण पड जाता है । इसके ५ भेद हैं ।

१ द्वागतराय—जिसके उदय से देने की चाहना करे व कोशिस करे परन्तु दे न सक ।

२ लामांतराय—जिमके उदय से लाभ होना चाहे व कोशिस करे, पर लाभ न हो सके ।

३ भागान्तराय—जिसके उदय से ससार की घस्तुओं को भोगने की चाहना करे व कोशिस करे, पर वह भोगने में न आवें ।

गंध; १० आम्ल, मधुर अने कषायैलरूप शुद्ध
 रस; तथा ११ लघु, मृदु, उष्ण अने स्निग्धरूप
 शुद्ध स्पर्श. ए चार पदार्थ पुण्यप्रकृतिने अर्थे
 प्रशस्त जाणवा. एउनी प्राप्ति थाय ठे, ते (वण-
 चउक के०) वर्णचतुष्कं, एटले वर्णचतुष्क कहेवाय.

११ जेना उदयथी मध्यम वजनदार शरीर-
 नी प्राप्ति थाय, एटले लोहनी पेठे अति जारी
 पण नहीं, अने आकमाना कपासनी पेठे अति
 हलकुं पण नहीं, किंतु मध्यम परिणामी होय;
 ते (अगुरुलहु के०) अगुरु लघु, एटले अगुरुलघु
 नामकर्म कहेवाय.

१२ जेना उदयथी बीजा बलवानने अति
 दुःसहनीय ठतां पोते गमे तेवा बलीयाने जीत-
 वाने समर्थ थाय ठे, एवा बलनी प्राप्ति थाय
 ठे, ते (पराधा के०) पराघातः, एटले पराघात
 नामकर्म कहेवाय.

४ उपभोगान्तराय—जिसके उदय से संसार की उपभोग करने योग्य वस्तुओं को काम में लाने की चाहना व कोशिश करे, पर काम में न ला सके ।

[भोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो एक बार काम में आवें फिर किसी काम की न रहें । जैसे भोजन, सुगन्ध आदि । उपभोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो बार बार काम में आवें । जैसे मकान कपड़े आदि]

५ वीर्यांतराय- जिसके उदय से किसी काम के करने का उत्साह करे पर वह उत्साह काम न कर सके ।

इस अंतराय कर्म के आने और आत्मा के साथ बंधने में कारख विघ्न का डालना है । कोई दान देता हो व देने की इच्छा करता हो उसको किसी न किसी प्रकार दान देने से रोकने की चाह व कोशिश करना, कोई को लाभ होता हो उसको लाभ न होने देने की चाह व कोशिश करना, दूसरे के भोगने व उपभोगने योग्य वस्तुओं को विगाड़ने की चाह व कोशिश करना दूसरे की शक्ति व उत्साह को विगाड़ने की चाह व कोशिश करना यह सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण हैं । इसके सिवाय और जितने ऐसे ऐसे काम हैं जिनके करने से हमारा व हमारे अधीन स्त्री व बालकों का विगाड़ होता है, ये सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण हैं । जैसे लड़के व लड़कियों को विद्या न पढ़ाने से उनके ज्ञान प्रकट होने में विघ्न पड़ने से, तथा बालकों की शादी छोटी उम्र में कर देने से जिससे उनका मन विद्या लाभ करते करते रुक जाय, व अपने अधीन नौकर चाकर व

गङ्ग के०) शुभ्रखगतिः, एटले शुभ्र विहायोगति नामकर्म कहेवाय.

२७ जेना उदयथी पोतानां अंगना सर्व अव-
यवो योग्य स्थलने विषे गोठववानी शक्ति सूत्र-
धारनी पेठे प्राप्त थाय ठे, ते (निर्मिण के०) नि-
र्माणं, एटले निर्माण नामकर्म कहेवाय.

२९-३० जेना उदयथी त्रस दशक एटले त्र-
सादि दश प्रकृति जे आगल कहेवाशे, तेनी
प्राप्ति थाय ठे, ते (तसदस के०) त्रसदशकं,
एटले त्रसदशक नामकर्म कहेवाय. तेनुं विवरण
आगलनी गाथामां कहेवाशे.

(सुरनरतिरिआउ के०) सुरनरतिर्यगायुः, ए-
टले ३९ जेना उदयथी देवताना आयुष्यनी प्राप्ति
थाय ठे, ते सुरायुष्य कहेवाय.

४० जेना उदयथी मनुष्यना आयुष्यनी प्राप्ति
थाय ठे, ते नरायुष्य कहेवाय.

प्रजा को धर्म सेवन में विग्रह डालने से अतराय कर्म का आश्रय होता है। इसी प्रकार विद्यालय, औषधालय भोजनालय, आदि धर्म कार्यों में उन्नति न चाहने से तथा बिगाड़ के भाव रखने से तो व अतराय कर्म का आश्रय होता है। जो धन यात्री लोग तीर्थयात्रा में तीर्थों पर तीर्थ के सुप्रबंध व उचित धर्म कार्य के लिये देते हैं उस धन से सुप्रबंध व उचित धर्म कार्य के लिये देते हैं उस धनसे सुप्रबंध न कर व उचित धर्म कार्य को न कर व्यर्थ डाले रखना व अपने काम में ल आना तीव्र अतराय कर्म का आश्रय करने वाला है।

इस तरह यह आठ प्रकार का कर्म हम समारी जीव अपने ही भावों के द्वारा वाधते हैं और आपहा उनके उदय थाने पर उनका फल भागते हैं जैसे मदिरा हम आपही पीते हैं और आपही दुःख भुगतते हैं तथा बदहजमी करने वाला भोजन हम आपही खाते हैं और आपही अनेक रागों को अपने में पैदा कर लते हैं।

इस तरह $4 + 5 + 2 + 2 = 8 + 5 + 2 + 4 = 18 =$ प्रकृति मुख्य करके = कर्मों की है। पर इनके भव यदि सूक्ष्म दृष्टि से किये जायें तो और बेगिनती हो सकते हैं।

इस प्रकार यह कर्म सर्व पौद्गलिक हैं जड हैं, हमार ही किये हुए हैं, अजीव हैं।

अध्याय तेरहवां

अन्य ४ द्रव्य

धर्म द्रव्य यह है—जा जीव पुद्गल को चलने में इस तरह

थिरं-स्थिर.

सुभं-शुभ.

च-अने.

सुभगं-सौभाग्य.

च-अने.

सुस्सर-सुस्वर.

आइज्ज-आदेय.

जसं-जश, यश.

तसाइ-त्रसादि.

दसगं-दश प्रकृति.

इमं-आ, एं.

होइ-होय छे, छे.

विस्तारार्थः—(तसवादरपज्जत्तं के०) त्रसवादर पर्याप्तं, एट्ठे १ जे कर्मना उदयथीजीवने त्रस-पणुं (त्रास पामी एक स्थानथी वीजे स्थाने ज-वानी शक्ति) प्राप्त थाय ते, २ जेना उदयथी वादर एट्ठे स्थूल शरीरनी प्राप्ति थाय, पण जे दृष्टि करी देखाय नहीं, एवां सूक्ष्म शरीरने न पमाय ते वादर नामकर्म कहेवाय.

३ जेना उदयथी आप आपणी पर्याप्ति पूरी करे, त्यारपठी मरे, ते पर्याप्ति वे प्रकारे ठे, एक लब्धि, वीजी करण, ते पर्याप्त नामकर्म कहेवाय.

मदद करे जैसे मछली को चलने के लिये पानी की जरूरत है, पानी मछली को प्रेरणा नहीं करता है कि चलो किन्तु बिना पानी के नहीं चल सकती इसी प्रकार धर्म द्रव्य प्रेरणा करके जीव और पुद्गल को नहीं चलाता है किन्तु उदासीन सहायक होता है।

अधर्मद्रव्य—धर्म द्रव्य से उलटा काम करता है अर्थात् जीव पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है; जैसे रास्ते में जाते हुये मुसाफिर को वृक्ष की छाया सहायक होती है।

आकाशद्रव्य—जोकि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म. काल इन पांच द्रव्यों को स्थान दे।

कालद्रव्य—वह द्रव्य है जो अन्य द्रव्यों को पर्याय व दशा पलटने में कारण रूप हो। यह दो प्रकार का है १ व्यवहार-काल—समय घड़ी घंटा आदि। निश्चयकाल-आकाश के एक एक प्रदेश में काल का एक एक अणु जैसे रत्नों की राशि। इस द्रव्य का एक अणु दूसरे अणु में एक में एक होकर नहीं मिलता। इसी से इस द्रव्य को अकाय कहते हैं।

प्रदेश उतने स्थान को कहते हैं जितनी जगह को पुद्गल का छोटा से छोटा अविभागी (जिसका फिर भाग न हो सके) परमाणु रोकता है। इस १प्रदेश वाले आकाश में धर्म द्रव्य और अधर्म-द्रव्य का एक प्रदेश और काल की एक अणु और पुद्गल के बहुत से परमाणु आ सकते हैं, इसी प्रकार जीव के शरीर में छोटे से छोटे में बहुत से अन्य शरीर धारी जीव आ सकते हैं। इसी से जीव पुद्गल अनन्त हैं किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल एक एक द्रव्य हैं—जैसे १ दीपक

ए जेना उदयश्री लोकने विषे माननीय वचन
थाय, ते आदेय नामकर्म कहेवाय.

१० जेना उदयश्री लोकने विषे यशःकीर्ति
थाय ते यशोनामकर्म कहेवाय.

एवी रीते (तसाइ दसगं के०) त्रसादि दशकं
एटले त्रस आदि दश प्रकृतिनुं दशक (इसं के०)
इदं, एटले ए पुण्यना जेदसां (होइ के०) जव-
ति, एटले ठे. ते पूर्वोक्त वत्रीशसां जेलीए, ते
चारे वेंतालीश थाय. ए पुण्यतत्त्वना वेंतालीश
जेद कल्या. आ गाथामां वे चकार जे ठे, ते
पादपूरणार्थ ठे ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीपुण्यतत्त्वविचारः समाप्तः ॥ ३ ॥

हवे पापतत्त्वनुं वर्णन करतां अहार प्रकारे पाप
वंधाय, अने व्याशी प्रकारे भोगवाय ते कहे ठे—

एक कमरे में जलाने से रोशनी के परमाणु कमरे भर में फैल जाते हैं किन्तु यदि दश दीपक उतनेही स्थान में जलाये जाय तो उतनेही स्थान में आ सकते हैं। यह परमाणु पुद्गल के स्थूल सूक्ष्म हैं जब इनके अणुओं में यह शक्ति है तो सूक्ष्म, व सूक्ष्म सूक्ष्म परमाणुओं में व जीव द्रव्य में यह शक्ति क्यों नहीं हो सकती है * इसी लिये एक जीव के एक प्रदेश भर स्थान में अनन्ते कार्माण पुद्गल के परमाणु आ सकते हैं तथा एक निगोदिप के सब से छोटे शरीर में अनन्ते शरीरी जीव समा सकते हैं। इन द्रव्यों का जहा पाया जाय उनको ही लोक (दुनिया) कहते हैं। यह सर्व लोक में है तथा इन द्रव्यों ही की पर्याय पट्टा से नाना प्रकार के मनुष्य, जंतु, वृक्ष, पहाड, धातु आपत्ति आदि पाई जाती हैं इन द्रव्यों में सब से ज्यादा काम पुद्गल और जीव का है बाकी ४ द्रव्य केवल सहायता मात्र हैं।

* देखिए श्री पार्श्वपुगण जी को।

शिष्यप्रश्न—धर्म अधर्म फल अरु चेतन चारों द्रव्य अरुणी गाण, तार्ते एक आकाश देश में प्रभुत्व के प्रवेश समाण मूरतवत अनन्ते पुद्गल ते उस नम में क्योंकर माण। गह सशय समझाय कहा गुरुदास होय अथ पूछन आये।

गुरुउत्तर सोगठा—यहु प्रदीप परकाण यथा एक मंदिर विपै। लह सहज अरुकाश, वाघा कहु उपजे नहीं। त्योही नम प्रदश में, पुद्गल स्वध अोक, निराशय निवसे मही, च्यों अनन्त त्या एक।

हवे पाप बांधवाना अठार प्रकार कहे ठे-प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया लोभ, राग, द्वेष, कलह, अज्ञ्याख्यान, पैशुन्य, रति अरति, परपरिवाद, मायामोसो, तथा मिथ्यात्वशब्दय. ए अठार प्रकारे पाप बांधाय ठे, अने व्याशी प्रकारे जोगवाय ठे, ते व्याशी प्रकार कहे ठे-

(नाणंतरायदसगं के०) ज्ञानांतरायदशकं, एटले १ जेना उदयथी पांच इंद्रिय, तथा मनोद्वाराए जे नियत वस्तुनुं ज्ञान थाय ठे, एवा प्रथम अक्षरोयलब्धिरूप मतिज्ञाननुं जे आह्लादन थाय, ते मतिज्ञानावरणीय पापकर्म कहेवाय.

२ जेना उदयथी मन अने इंद्रियोथी थलुं अर्थोपलब्धिरूप ज्ञान अथवा द्वादशांगीरूप शास्त्रानुसारे जे ज्ञान थाय ठे, एवा श्रुतज्ञाननुं आह्लादन थाय, ते श्रुतज्ञानावरणीय पापकर्म कहेवाय.

इस प्रकार अजीव पांच प्रकार के होते हैं जिन में चेतना न होने पर भी अपने अपने स्वभाव रूप कार्य करने की शक्ति होती है (इनका विशेष वर्णन जानने के लिये हमें जैन शास्त्रों के तो द्रव्यानुयोग के ग्रंथ और यूरुप के विद्वानों द्वारा प्रकाशित पदार्थ विद्या के ग्रंथ पढ़ने चाहिये) ।

अध्याय चौदहवां

आश्रव तत्व ।

पुद्गल के कार्माण परमाणुओं का हमारी आत्मा के प्रदेशों के पास पास आने को आश्रव कहते हैं । कर्मों के आने के ३ मार्ग हैं । मन, वचन, काय, इनको योग कहते हैं । जब यह हिलते हैं कार्माण परमाणुओं का आना होता है यह दो प्रकार का होता है एक भाव आश्रव दूसरा द्रव्य आश्रव ।

मिथ्यात्, अविरत (पांच इन्द्रिय मन के न रोकने व अदया भाव) प्रमाद (आलस्य) कपाय (क्रोध मान माया लोभ) आदि के भाव अथवा दानानि शुभ कर्म करने के भाव इत्यादि भाव जिनसे कि अशुभ व शुभ कर्म आते हैं उनके भाव आश्रव कहते हैं । जो कर्मरूपी पुद्गल आते हैं उनको द्रव्याश्रव कहते हैं । कर्म आठ प्रकार के हैं उनके आने के कौन कौन से भाव हैं इनका वर्णन 'अजीव तत्व' में हो चुका है ॥

कर्म जो आकर आत्मा के प्रदेशों में बंध जाते हैं उनको सांपरायिक आश्रव कहते हैं और जो आवें तो सही पर बन्धे नहीं उनको ईर्यापथ आश्रव कहते हैं । जब अपने परिणाम में राग-

६ जेना उद्यथी पोताना घरमां देवा योग्य वस्तु ठतां तथा दाननुं फल जोणतां ठतां पण आपी शकाय नहीं, ते दानांतराय पापकर्म कहेवाय.

७ जेना उद्यथी दातार ठतां, दातारना घरमां वस्तु ठतां, मागनार माह्यो ठतां पण जे यांचित वस्तुनी प्राप्ति न थाय, ते लाजांतराय पापकर्म कहेवाय.

८-ए जेना उद्यथी पोते यौवन ठतां, सुरूप ठतां, तथा जोगोपजोग्य वस्तुनी प्राप्ति थइ ठतां पण ते जोगवाइ न शकाय, ते जोगांतराय तथा उपजोगांतराय, ए बे पापकर्म कहेवाय, ८ पुष्पादि पदार्थ जे एक वार जोगवाय, ठे तेने जोग कहे ठे, अने ए वस्त्रादिक पदार्थ जे वारंवार जोगवाय ठे, तेने उपजोग कहे ठे.

हैं, कपाय आदि होंगे तब अवश्य सापरायिक आश्रय होगा । किन्तु जब यह न होंगे और बचन व काय हिलने से कर्म आयेंगे जैसे कि केवल ज्ञानियों के आते हैं तो उनके प्रागमन ईर्यापथ कहते हैं । कर्म किन किन भाषों से आता है इसका विशेष वर्णन गोमटसार के जीव कांड तथा कर्मकांड से विशेष मालुम हो सकता है ।

अध्याय १५वां

वध तत्त ।

कर्मों का बांधना ही वास्ताव में हमारे लिये सत्कार की अवस्था में रहने का कारण है ।

हामें मुख्य धारण राग और द्वेष है ।

जिम समय हम अपने पहले के बांधे हुए कर्मों का फल पाते हैं उस समय यदि हमारी आत्मा अपने परिणाम चला कर उस फल को अच्छा व बुरा समझेगी उसी समय वह आत्मा कार्मण परमाणुओं को रीच मगा जो अगाड़ी फिर कर्मो उदय में आयेंगे—किन्तु यदि आत्मा उस फल में अपना परिणाम राग व द्वेष रूप व करके समता रखे, तब वह कर्म अपना फल दूर न ले जाये और यह आत्मा कर्मों का बंधन न करेगा—जैसे किसी माणुष्य का पुत्र मर गया तब यदि उसका आत्मा शोचिन हागा तब जितने तीव्र व मद् भाव होंगे उसी भावि उसी प्रवृत्ति व कार्मण परमाणुओं से बंधा होगा । किन्तु यदि शांति न होकर व सत्कार की

१३ जेना उदयथी सामान्यपणे जे रूपी इ-
व्यनुं मर्यादापणे ग्रहण थाय ठे; एवा अवधि-
दर्शननुं जे आढादन थाय, ते अवधिदर्शना-
वरणीय पापकर्म कहेवाय.

१४ जेना उदयथी समस्त वस्तुनुं जे सामा-
न्यपणे देखवुं थाय ठे, एवा केवलदर्शननुं जे आ-
ढादन थाय, ते केवलदर्शनावरणीय पापकर्म.

१५ जेना उदयथी निद्रावस्था थइ गया
पठी सुखपूर्वक एक शब्दमात्रथी जाग्रदवस्थानी
प्राप्ति थाय, ते निद्रारूप पापकर्म कहेवाय.

१६ जेना उदयथी निद्रावस्था थइ गया पठी
दुःखपूर्वक जाग्रदवस्थानी प्राप्ति थाय, ते नि-
द्रानिद्रागाढ निद्रारूप पापकर्म कहेवाय.

१७ जेना उदयथी बेठां बेठां तथा उजां उजां
निद्रा आव्या करे, ते प्रचलारूप पापकर्म
कहेवाय.

क्षणभंगुरता देखता हुआ वह आत्मा समपरिमाण रक्खेगा अर्थात् किसी प्रकार की हलन चलन इस वार्ता के होने से उसके परिणामों में न होगी तौ वह आत्मा कर्मों का बंधन नहीं करेगा ।

१४८ प्रकार के जो मुख्य भेद आठ कर्मों के दिखलाए गए हैं इसी बंध के द्वारा होते हैं—जिस जिस प्रकार का कर्म यह बांधता है उस उस प्रकार का रस उदय होने पर पाता है । इस बात के अनेक दृष्टान्त जैन शास्त्रों में मिलेंगे । श्री रामचन्द्र के भाई भरत जी के पूर्वभव के चरित्र में एक मुनि का वर्णन है कि उसने एक ऐसे उद्यान में विहार किया जहां कि चारण रिद्धिधारी आचार्य्य ने चौमासा किया था और जिस समय यह मुनि वहां पहुंचा वह विहार कर गए थे । उस उद्यान के निकटवर्ती नगर के लोग उसी दिन आचार्य्य के दर्शन करने के लिये आए और इन्ही को आचार्य्य मान नमस्कार किया व धर्म सुना । तब इस मुनि ने उन लोगों को यह न बतलाया कि मैं वह आचार्य्य नहीं हूं जिसका नाम आप लेते हो । इतनी माया रखने के कारण उसी मुनि को तिर्यञ्च गति में तिलोकमंडन हाथी की पर्याय में आना पड़ा ।

जगत के जीवों के तरह तरह के चरित्र दिखलाई पड़ते हैं कारण यही कि उनके पहले के बांधे हुए कर्मों का उदय है ।

२१ जेना उदयथी दुःखनो अनुभव थाय ठे, ते अशातावेदनीय पापकर्म.

२२ जेना उदयथी वीतरागनां वचननी विपरीत सद्वहणा थाय, ते मिथ्यात्वमोहनीय पापकर्म कहेवाय.

(थावरदसनरयतिगं के०) स्थावरदशकनरकत्रिकं, एतद्वे २३-३२ जेना उदयथी स्थावरदशकनी प्राप्ति थाय ठे, ते स्थावरदशक नामनुं पापकर्म, ते आगल कहेवाशे, भाटे अहीं नाम मात्र दर्शाव्युं ठे.

३३-३५ जेना उदयथी नरकनी गति, नरकनी आनुपूर्वी (एतद्वे नरके जता जीवने उत्पत्ति क्षेत्रे वळवुं थाय ते), तथा नरकनुं आउखुं प्राप्त थाय ठे, ते नरकत्रिक पापकर्म कहेवाय.

(कसायपणवीस के०) कषायपंचविंशतिः, एतद्वे पचीश कषायरूप पापकर्मना पचीश प्रकार

अध्याय १६ वां

सवर

जिन द्वारों से कार्माण परमाणुओं का आगमन आत्मा के प्रदेशों के पास होता है उन द्वारों का रोकना सो सवर है—यह भा दो प्रकार का होता है—

१—भाय सवर—जिन भायों के करने से आत्मा कर्मों को रूँचे उन भायों को रोकना सो भाय सवर है ।

मिथ्यात रूपों भायों के रोकन के लिये सम्यग्दर्शन होने की अविरत रूप भायों का यन्द करने के लिय देशत्रन पी तथा महाव्रत का, प्रमाद के नाश करने को निरालम्बी ध्याती मुनि होने की, क्रोध, मान, माया, लाभ व यन्द करने के लिय धीतराग भायों की मन यचन धाय योगों को रोकना के लिये विशाल निज रूप में धिरता दान की श्राव श्यकता है—

इसी सवर के पाने के लिये बुद्धिमानों ने यह हेतु धतलाये हैं ।

(१) गुणि—मन, यचन, काय को यश में रखना ।

(२) मामेति—यह पात्र तर्ह की होती है ।

(क) देग पर यचना ।

(ग) ममभक्त हित मित यचन यालना ।

(ग) शुद्ध निर्दोष भोजन लेना ।

(घ) दण्डर यस्तुओं को रखना व उठाना ।

देशविरतिपणुं आववा दीए नहीं, ने अंते ति-
 र्चनी गतिनी प्राप्ति करावे. ए क्रोध सुकला
 तलावनी रेखा जेवो ठे, मान हारुकाना थांजला
 जेवो ठे, माया मंडाना शिंगना जेवी ठे, तथा
 लोच कर्दमना रंग जेवो ठे.

४८-४९ जेना उदयश्री सर्वविरतिरूप प्रत्या-
 ख्याननुं आढादन थाय, पण लेशमात्र प्रत्या-
 ख्यान (त्यागवृत्ति होय, तेने प्रत्याख्यानीय पाप-
 कर्म कहीए. एना क्रोध, मान, माया अने लोच
 ए चार जेद ठे. ए चार मास सुधी कायम रहे,
 सर्वविरतिरूप चारित्रनो घात करे, तथा अंते
 मनुष्यनी गतिनी प्राप्ति करावे ठे. ए क्रोध, रे-
 तीनी रेखा जेवो ठे, मान काष्टना थांजला जेवो
 ठे. माया वृषजना मूत्रनी रेखा जेवी ठे, अने
 लोच काजलना रंग जेवो ठे.

(ॐ) देख कर मल मूत्र आदि डालना ।

(३) धर्म—निम्न लिखित दश लक्षण वाले धर्म पर चलना—

(क) उत्तम क्षमा—क्रोध को वश में करके निर्बल का भी अपराध विचार पूर्वक क्षमा करना ।

(ख) मार्दव—घमंड किसी बात का न करके अपने भाव यह समझ कर कोमल रखने कि आत्मा तो सबही की निश्चय से एक रूप है छोटा बड़ापन केवल शरीर सम्बन्धी है । सो इसके छूटने का कोई समय नियत नहीं, यह शरीर नाश होने ही वाला है । इस से संसार की चीज़ों को लेकर मेरा मद करना व्यर्थ तथा हानिकारक है ।

(ग) आर्जव—किसी प्रकार की मायाचारी न करके परिणाम सरल रखना ।

(घ) सत्य—स्वपरहितकारी सच्चे वचन कहना ।

(ङ) सौच—मन बचन कार्य की पवित्रता (सफाई)

(च) सयम—इन्द्रियों को वश में रखना । जीव दया पालनी ।

(छ) तप—मन को एक ठिकाने करके आत्मा की शक्ति प्रगट करने में यत्न करना ।

(ज) त्याग—दान देना व परिग्रह न रखना ।

(झ) आर्किंचन—परिग्रह की ममता विलकुल न होना ।

(ञ) ब्रह्मचर्य—स्त्री मात्र से चित्त हटाकर अपना ब्रह्म जो आत्मा उसके बीच में उसको स्थिर करना ।

५२-५७ जेना उदयथी एक वस्तु निमित्ते तथा वीजी परनिमित्ते, ए वे प्रकारथी हास्य, रति, अरति, शोक, जय तथा दुगंठानी उत्पत्ति थाय, तेने हास्यषट्करूप पापकर्म कहीए. एवं सत्तोवन्न.

५८ जेना उदयथी स्त्री जोगववानी इहा थाय, तेने पुरुषवेदरूप पापकर्म कहीए; एने तृणना अग्निनी उपमा ठे.

५९ जेना उदयथी पुरुष जोगववानी इहा थाय, तेने स्त्रीवेदरूप पापकर्म कहीए; एने धुणीना अग्निनी उपमा ठे.

६० जेना उदयथी स्त्री तथा पुरुष ए वन्नेने जोगववानी अजिलाषा थाय, तेने नपुंसकवेदरूप पापकर्म कहीए. एने नगरदाहनी उपमा ठे.

६१-६२ जेना उदयथी तिर्यचनी गति तथा तिर्यचनी आनुपूर्वीनी प्राप्ति थाय, ते (तिरिय-दुगं के०) तिर्यगिद्धकं, एटले तिर्यचद्विक नाम-कर्म कहेवाय ॥ १८ ॥

(४) नीचे लिखे अनुसार १२ भावनाओं को बार बार भावना अर्थात् याद करना ॥

(१) अनित्य—इस जगत में सब चीजों की दशाए बदलने वाला है काइ एक दशा में स्थिर नहीं रहता इससे मोह करना निरर्थक है ।

(२) अशरणा—जगत में जीव को अपने किये हुए कर्मों का फल भागन से राकने व लिये किसी की भी ताकत नहीं है इसलिए झूठा शरणा का स्थान छोड़ अपने ही आत्मा को अपना शरणा मानना चाहिये । अथवा पंच परमेशी का शरणा अनुभव करना चाहिये ।

(३) संसार जित चार गति रूपी संसार की अनेक योनियों में जीव का भ्रमण उसी के बाधे कर्मों के द्वारा हुआ करता है उनमें कहीं रचमात्र भा आन व नहीं है । द्रव, पशु, मनुष्य, सबही मानसिक तथा शारीरिक दुःख से दुःखी हैं इस संसार में प्राप्ति करना उचित नहीं ।

(४) एकत्व—अपन बाध हुए कर्मों का फल इस जीव को अकलाही भुगतना पड़ता है ।

(५) अयय—अपने से जितने दूसरे हैं सब पर है । जगत में सम्बन्ध मतलब का है ।

(६) अशुचि—यह शरीर किसी दशा में भी पवित्र नहीं है और व स्नात चन्दनादि से किसी प्रकार शुद्ध हो सकता है इस लिये शरीर को अपना दास बना कर रखना । आप दास न हो जाना ।

६४ जेना उदयथी शंख प्रमुख जीवोनी जातिना शरीरनी प्राप्ति थाय ठे, ते त्रैन्द्रिय जातिरूप पापकर्म कहेवाय.

६५ जेना उदयथी जू, माकडादिक जातिना शरीरनी प्राप्तिथाय ठे, ते त्रैन्द्रिय जातिरूप पापकर्म कहेवाय.

६६ जेना उदयथी वृश्चिकादिक जातिना शरीरनी प्राप्ति थाय ठे, ते चतुरिन्द्रिय जातिरूप पापकर्म कहेवाय.

६७ जेना उदयथी उंट अथवा गधेदानी पेठे नरसी गतिनी प्राप्ति थाय ठे, ते (कुखगइ वं०) कुखगतिः, एटले अशुभ विहायोगति नामकर्म कहेवाय.

६८ जेना उदयथी पोताना जीन, दांतहरस, रसोखी प्रमुख अवयवे करी पोतेज हणाय ठे, ते (उवघाय के०) उपघातः, एटले उपघात नामकर्म कहेवाय.

(ड) देख कर मल मूत्र आदि डालना ।

(३) धर्म—निम्न लिखित दश लक्षण वाले धर्म पर चलना—

(क) उत्तम क्षमा—क्रोध को वश में करके निर्बल का भी अपराध विचार पूर्वक क्षमा करना ।

(ख) मार्दव—घमंड किसी बात का न करके अपने भाव यह समझ कर कोमल रखने कि आत्मा तो सबही की निश्चय से एक रूप है छोटा बड़ापन केवल शरीर सम्बन्धी है । सो इसके छूटने का कोई समय नियत नहीं, यह शरीर नाश होने ही वाला है । इस से संसार की चीजों को लेकर मेरा मद करना व्यर्थ तथा हानिकारक है ।

(ग) आर्जव—किसी प्रकार की मायाचारी न करके परिणाम सरल रखना ।

(घ) सत्य—स्वपरहितकारी सच्चे वचन कहना ।

(ङ) सौच—मन वचन कार्य की पवित्रता (सफाई)

(च) संयम—इन्द्रियों को वश में रखना । जीव दया पालनी ।

(छ) तप—मन को एक ठिकाने करके आत्मा की शक्ति प्रगट करने में यत्न करना ।

(ज) त्याग—दान देना व परिग्रह न रखना ।

(झ) आर्किंचन—परिग्रह की ममता विलकुल न होना ।

(ञ) ब्रह्मचर्य—स्त्री मात्र से चित्त हटाकर अपना ब्रह्म जो आत्मा उसके बीच में उसको स्थिर करना ।

नाराच कहे ठे. जेने एक पासे मर्कटबंध होय, तेने अर्धनाराच कहे ठे, ज्यां मांहोमांहे हारु-कांने एक खीलीनो बंध होय, तेने कीलिका कहे ठे, अने जे खीली विना मांहोमांहे उखलमां रहेला मुसलनी पेठे अमस्तां अरुकी रहां होय, तेने ठेवठो कहे ठे. ए पांच संघयणनी जेणे करी प्राप्ति थाय ठे; ते अप्रथम संघयण-रूप नामकर्म कहेवाय.

७७-७२ जेना उदयथी ठ संस्थानमांना पहेला संस्थान विना वीजां पांच संस्थाननी प्राप्ति थाय ठे, तेमां जे वट वृद्धनी पेठे नाजिनी उपर सुलक्षण युक्त तथा नाजिनी नीचे निर्लक्षण युक्त होय, तेने न्यग्रोध परिमंरुल संस्थान कहे ठे; जे नाजिनी नीचेतुं अंग सारुं अने नाजिनी उपरतुं अंग नरसुं होय, तेने सादि संस्थान कहे ठे; जे उदर प्रमुख लक्षणोपेत अने हाथ, पग,

(७) नीचे लिखे अनुसार १२ भावनाओं को बार बार भावना अर्थात् याद करना ॥

(१) अनित्य—इस जगत में सब चीजों की दशाए बदलने वाली हैं काइ एक दशा में स्थिर नहीं रहता इससे मोह कर्मां निरथक ह ।

(२) अशरण—जगत में जीव को अपने किये हुए कर्मों का फल भागन स राकने क लिए किसी की भी ताकत नहीं है इसलिये झूठा शरणा का स्थान छोड़ अपने ही आत्मा को अपना शरण मानना चाहिये । अथवा पंच परमंष्टी का शरण अनुभव करना चाहिये ।

(३) ससार—जिन चार गति रूपी ससार की अनेक योनियों में जीव का भ्रमण उसी क बाधे कर्मों के द्वारा हुआ करता है उनमें कहीं रचमात्र भी आनंद नहीं है । देव, पशु, मनुष्य, सद्यहा मानसिक तथा शारारिक दुःख स दुःखां हैं येस ससार में प्राप्ति करना उचित नहीं ।

(४) एकत्व—अपन बाध हुए कर्मों का फल इस जीव को अकेलाही भुगतना पड़ता है ।

(५) अयत्न—अपने स जितने दूसरे हैं सब पर है । जगत में सम्बन्ध मतलब का है ।

(६) अशुचि—यह शरीर किसी दशा में भी पवित्र नहीं है ओर न स्नान धस्नादि से किसी प्रकार शुद्ध हो सकता है इस लिये शरीर को अपना दास बना कर रखना । आप दास न हो जाना ।

गाथा १० मीना बूटा शब्दना अर्थ.

थावर-स्थावर.

सुहुम-सूक्ष्म.

अपज्ज-अपर्याप्त.

साहारणं-साधारण.

अथिरं-अस्थिर.

असुभ-अशुभ.

दुभगाणि-दुर्भाग्य.

दुस्सर-दुःस्वर.

अणइज्ज-अनादेय.

अजसं-अयश.

थावरदसगं-स्थावरदशक.

विवज्जच्छं-विपरीतार्थ.

विस्तारार्थः—(थावरसुहुमअपज्जं के०) स्था-
वरसूक्ष्मापर्याप्तं, एटले जेना उदयथी स्थावरपणुं
प्राप्त थाय, तेथी जो तापादिके पीनाय, तोपण
त्यांथी खसी शकाय नहीं, ते प्रथम स्थावर ना-
मकर्म कहेवाय. जेना उदये दृष्टिना अगोचर
एवा सर्व लोकमां व्यापी रहेला सूक्ष्मपणानी
प्राप्ति थाय, ते पण पृथिव्यादिक पांचज जाण-
वा, ते वीजुं सूक्ष्म नामकर्म कहेवाय. जेना
उदयथी स्वयोग्य पर्याप्ति पूरी कस्या बिनाज
मरण पामे, ते वीजुं अपर्याप्त नामकर्म कहेवाय.

(७) आश्रव—कर्मों के आने के कारणों का विचार करना ।

(८) संवर—कर्मों को आने से रोकने के लिये उपाय विचारना ।

(९) निर्जरा—कर्मों को नाश करने का यत्न विचारना ।

(१०) लोक—छः द्रव्यों से भरे लोक का स्वरूप विचार करना ।

(११) बोध दुर्लभ—जगत में आत्मज्ञान का पाना बड़ा कठिन है—यदि ऐसा ज्ञान हो जाय फिर अपना समय व्यर्थ न खोना ।

(१२) धर्म—जीव दया जिसमें प्रधान है वही धर्म है—यह धर्म आत्मा ही का स्वभाव है सो किसी प्रकार भी त्यागने योग्य नहीं है ।

(५) परीसहों को सम परिणामों से सहना—

ये परीसह २२ हैं—१ क्षुधा (भूख) २ तृषा (प्यास) ३ शीत (जाड़ा) ४ गरमी ५ दंशमशक (डंस मच्छरकी) ६ नग्न (नंगे उष्ण रहने की) ७ अरति (नसुहाने लायक चीजों के सम्बन्ध की) ८ स्त्री (स्त्री की ओर परिणाम हो जाने की) ९ चर्या (चलने की) १० निषद्या (बैठने की) ११ शैया (सोने की) १२ आक्रोश—(गाली सुनने की) १३ वध (मारने की) १४ याचना (मांगने की) १५ अलाभ भोजनादि न मिलना की) १६ रोग १७ तृणस्पर्श (कटीले तिनके आदि के छूने की) १८ मल (शरीर के मलादिक की)

जेना उदयथी लोकने विषे तेनुं बोखवुं कोइ मान्य करे नहीं, ते नवमुं अनादेय नामकर्म कहेवाय. जेना उदयथी लोकमां अपकीर्ति थाय, पण कोइ यश बोखे नहीं, ते दशमुं अयश नामकर्म कहेवाय.

एवी रीते आ कहुं जे (थावरदसंगं के०) स्थावरदशकं, एटले स्थावरदशक ते पुण्यतत्त्व-मां कहेला त्रस दशकथी (विवज्जहं के०) विपर्ययार्थ, एटले विपरीतार्थ जाणी लेवुं. ॥ १० ॥

॥ इति पापतत्त्वविचारः समाप्तः ॥

हवे आश्रवतत्त्व वेंतालीश प्रकारे कहे ठे-
इंदिअ-कसाय-अव्यय, -जोगा पंच चउ
पंच तिन्नि कमा ॥ किरिआउ पणवीसं,
इमा उ ताउ अणुक्रमसो ॥ ११ ॥

१ कोइ ठेकाणे “इमाउ ताओ” हे, त्यां इमाउ एटले आ, अने ताओ एटले ते, ए मुजव अर्थ करवो.

१६ सत्कार पुरस्कार (आदर न होने की) २० अप्रज्ञा (बुद्धि न होने की) २१ अज्ञान (ज्ञान का कर्म की) २२ अदर्शन (अज्ञान विगडने के कारण मिलने की)

(६) चारित्र सामायाक आदि करकेष महाव्रत आदि पाल के अपने परिणामों को अपने रूप में चलाना ।

इस तरह सवर करने के लिये मुख्य करके ६ कारण है । हमारे लिये हर समय उचित है कि हम इन कारणों को अपने नेत्र के समुद्र रक्षकों—पेसा करने से न ता हमारा कर्मा न आश्रय होगा और न हम इस जगत में कोई प्रकार किसी को हानि कारक होंगे—सभ्यता (Gentlemanliness) के प्राप्त करने के लिये हमें सवर धारण करना चाहिये ।

अध्याय १७ वा

निजरा ।

यद्ये कर्मा का दूर होना सो निजग है । यह निजरा दो प्रकार से होता है—१ सविपाक निजग—जो कि अपने आप हर समय हुआ करता है जब कम अपना रस न चुस्त है तब भूड जाते हैं १ अविपाक निजग जा कि यग नरके करनी होती है ।

यद्ये निर्जरा तप द्वारा होती है । तप के अर्थ-तपाने के है जैसे मेल स मिला माना अग्नि में डालने स शुद्ध हो जाता है वैसेही कर्मों स मिली आत्मा का तपान स इस के काममल शलग हो जाते है ।

चक्षु, नासिका, जिह्वा तथा स्पर्शन, ए पांच इंद्रियो ठे, क्रोध, मान, माया, ने लोभ, ए चार कषाय ठे, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन अने परिग्रह ए पांच अत्रत ठे. मनोयोग, वचनयोग, तथा काययोग ए त्रण योग ठे, ए अनुक्रमे सत्तर जेद थया, (उ के०) तु, वली (किरिआउं के०) क्रियाः, एटले पापक्रियाउं (पणवीसं के०) पंचविंशतिः, एटले पचीश ठे. (ताउं के०) ताः, एटले ते क्रियाउं (इमा के०) इमाः, एटले आ आगळ कहेवाती एवी (अणु-क्रमसो के०) अनुक्रमशः, एटले अनुक्रमे करी जाणवी. एम सर्व मळी वेंतालीश जेद आश्रव-तत्त्वना जाणवा ॥ ११ ॥

ए आश्रव वे प्रकारे ठे. एक द्रव्याश्रव अने बीजो ज्ञावाश्रव. जे जीवना शुभाशुभ परिणाम, ते ज्ञावाश्रव कहीए, एटले इंद्रियना उपयोगरूप

यह तप १२ प्रकार का होता है—६ बाह्य ६ अंतरङ्ग।

बाहरी तप उसको कहते हैं जिस के ग्रहण करने से अन्दर का तप सिद्ध हो सकता है। यह छः प्रकार होता है।

१ अनशन—चार प्रकार का आहार छोड़ कर निर्जलव्रत को एकादिदिन का प्रमाण लेकर करना—इन्मी को उपवास कहते हैं समय समय पर इस तप के करने से इन्द्रियों का स्वाच्छा, चारीपना, मिटता है तथा संसार देह भोगों से राग कम होता जाता है।

२ अवमोदर्य—जितनी भूख हो उससे इतना कम खाना कि जिससे नींद आलस्य न आ जावे तथा रोग न पैदा हो जावे इसके धारण करने से हम अपने से आलस्य को दूर रखेंगे।

३ वृत परिसख्यान—आशा तृष्णा, मिटाने के वास्ते यह नियम करना कि आज हम एक व दो व पांच घर तक जायेंगे भिक्षा मिलेगी तो लेंगे ज्यादा न जायेंगे। तथा मिट्टी के व चांदी के व पीतल के बर्तनों में भोजन मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं। अथवा राजा के यहां ब्रने का भोजन मिलेगा तो लेंगे नहीं तो नहीं—इस प्रकार दिल की कमजोरी को टालने के मतलब से अटपटी आखरी का लेना। परन्तु किसी को प्रकाश न करना सो वृतपरिसख्यान तप है।

४ रस परित्याग—जिह्वा इन्द्री की लंपटता के मिटाने के मतलब से तथा नींद को जीतने की गरज से, तथा स्वाध्याय में चित्त रखने के प्रयोजन से इन छः रसों को समय समय पर छोड़ने रहना सो रस परित्याग नामा तप है—घी, दूध, दही, मीठा, नोन, तेल, यह छः रस हैं—

विस्तारार्थ—कायाने अजयणाए प्रवर्त्तावतां
जे क्रिया लागे, ते पहेली (काइअ के०) कायिकी
क्रिया. ते वे प्रकारे ठे, एक मिथ्याद्रष्टि अथवा
सम्यग्द्रष्टि अविरतिवंतनी उठवा वेसवा आदि
कर्मबंधना हेतुरूप सावध क्रिया ते अनुपरत
कायिकी क्रिया, अने बीजी अशुभ योगवाळाने
द्रष्ट अनिष्ट विषय प्राप्त थतां रति अरति पामवा
रूप इंद्रिय संबधी तथा अनिंद्रिय ते अशुभ
मन संबधी मोक्ष तरफ दुर्व्यवस्थित प्रमत्तमुनि-
नी क्रिया, ते दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया कहेवाय.
खडगादिक अधिकरणे करी जे जीवोनुं हनन
थाय, अथवा जेना वडे आत्मा नरकादि गति-
नो अधिकारी थाय, ते बीजी (अहिगरणीया
के०) अधिकरणीकी क्रिया. तेमां प्रथम वनावी
राखेलां खडगादिकनां अंगने परस्पर जोमी रा-
खवां, ते संयोजनाधिकरणिकी, अने शरुथी

५ विधिक, शय्यासन—जीवों की बाधा से रहित एकांत स्थान जैसे सूना घर, मठ, गुफा, नदी तट आदि स्थानों में शयन आसन करना जिसमें प्रह्वचर्य, स्वाध्याय तथा ध्यान भले प्रकार पालन कर सके।

६ कायकौश्ल—देह के सुखिया स्वभाव को मिटाने के लिये तथा दुःख आने पर कायरता होने के बन्धन के लिये शरीर को यथाशक्ति कष्ट भी देते रहना—जैसे गर्मी में पहाड़ के ऊपर गडे हो, वर्षा में वृक्ष के तले, तथा शरदी में नदी के किनारे व चोराहरे पर खडे हो, अतरंग तप करना।

इन उपर्युक्त ६ गहरी तपों का अभ्यास करने वाला अतरंग तपों का भल प्रकार पालन कर सकता है—

अतरंग तप यह है—

१ प्रायश्चिन—प्रमाद (आलस्य) के कारण जो कोई दोष उन जावे उसके दूर करने का यत्न करना, गुरु से कह कर दंडादि लना।

२ विनय—आडर सकार करना—यह ४ प्रकार का होता है।

(क) वृशन विनय—सम्यक् दर्शन को भले प्रकार धारण करना। तथा सम्यक दृष्टि धमात्मा पुरुषों की उचित विनय करना।

(ख) ज्ञान विनय—ज्ञान को भले प्रकार हासिल करना, सम्यक् ज्ञानियों का यथा योग्य आडर करना, तथा ज्ञान के दाग धाले शास्त्रादिकों को अच्छी तरह रखना तथा पढ़ना पढ़ाना।

तथा अजीवारंजिकी, एम वे जेदे जाणवी. दास,
दासी, पशु, धन, धान्यादिक नवविध परिग्रह
मेलवतां तथा तेनी उपर मोह करतां जे क्रिया
लागे ते सातमी (परिग्रहिया के०) परिग्रहिकी
क्रिया जीवपारिग्रहिकी तथा अजीवपारिग्रहि-
की, एम वे जेदे ठे. मायाए करी जे बीजाने
ठगवुं, अंतर दुष्ट जावने वहारथी शुद्ध देखा-
रुवो, तथा जुठी साक्षी खोटा देख लखी आ-
पवारूप आत्मजाववंचनमाया तथा परजाववंच-
नमाया, ए जेदे आठमी (मायावत्तीअ के०) मा-
याप्रत्ययिकी क्रिया. मूलमां जे (किरिआ के०)
क्रिया शब्द ठे, ते उक्त प्रकारे सर्व शब्दोने
जोरुवो. आ गाथा तथा आगलनी वे गाथामां
प्राकृत पदोनां संस्कृत पदो प्रगट ठे. तेज ग्राह्य
ठे ॥ ३३ ॥

(ग) चाग्रि चिनय—धावक मुनि के करने योग्य आचरण बड़ी प्राप्ति से करना तथा सम्यग्चारित्र के पालने वालों का यथा योग्य आदर करना ।

(व) उपचार, विनय—शास्त्र को आते देख कर खड़ा हो जाना दंडवत करना, आचार्यादिक के पीछे चलना, कायदे से बैठना, हाथ जोड़ना आदि व्यवहार-विनय को उपचार विनय कहते हैं ।

३ वैयावृत्य—अपने शरीर से तथा भोजनादि व पुस्तकादि दान कर व उपदेश देकर धर्मात्मा मुनि तथा आचर्यों की सेवा करनी सो वैयावृत्य नामा तप है ।

४ स्वाध्याय—शालस्य को छोड़ कर ज्ञान की भावना करना सो स्वाध्याय है यह पांच प्रकार का होता है ।

क—वांचना—स्वयं शास्त्र को पढ़ना ।

ख—प्रेछना—पढ़ते हुए जहाँ न समझे उसको अपने से विशेष जानकार से पूछना ।

ग—अनुप्रेक्षा—जो कुछ पढ़ा व पूछा उसको, वार वार विचार करना ।

घ—आम्नाय—जो विचार करके निर्णय किया होय उसको ज्ञान आचार्य तथा विद्वानों के कथन से मिलान करना ।

ङ—धर्मोपदेश—अन्य जीवों को जो तत्वों के मतलब आप समझ रक्खे हैं सो समझाना ।

५—व्युत्सर्ग—देह तथा देह के सम्बन्ध को अपना न मानना । इसी लिये बाहरी धनादि परिग्रह तथा अंतरंग

तथा आत्मा तेज नहीं. एम सर्वथा विभेद माने, ते तद्व्यतिरिक्त मिथ्या एम. वे जेदे नवमी (मि-
 ष्टादंसणवत्ती के०) मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया.
 अविरतिए करी पञ्चस्काण कीधा विना जे सर्व
 वस्तुनी क्रिया लागे, ते दशमी (अप्पञ्चस्काणीय
 के०) अप्रत्याख्यानिकी क्रिया जीव तथा अजीव
 जेदे वे प्रकारे ठे. (य के०) च, वली कौतुके करी
 अश्व, पाषाण, प्रमुखने जोवुं, ते अग्यारमी.
 (दिष्टि के०) दृष्टिकी क्रिया जीव तथा अजीव
 जेदे वे प्रकारनी ठे. रागने वशे करीने जे पुरुष,
 स्त्री, गाय, बलद, वस्त्र प्रमुख सुकुमार वस्तुने
 स्पर्श करवो, तेथी जे क्रिया लागे, अथवा कोश
 संदेह उत्पन्न थयोथी पूठवुं, तेथी जे क्रिया ला-
 गे, ते वारमी (पुष्टि के०) स्पृष्टिकी अथवा पृ-
 ष्टिकी क्रिया. जीव तथा अजीव जेदे वे प्रकार-
 नी ठे. (य के०) च, वली जीव तथा अजीव

क्रोधादिक तथा कायकी ममता को छोड़ना सा व्युत्सर्ग नामा तप है ।

६—ध्यान—यही वह तप है जाकि कर्मों की निजरा बहुत शीघ्र कर सकता है तथा ऊपर कहे हुए ६ प्रकार के बाहरी तप और पाच प्रकार के अन्तरंग तप इसी तपकी सहायता करने के लिये किये जाते हैं ।

अध्याय १८ वां

ध्यान

ध्यान ही एक वह प्रज्ञान भाग है जिसके द्वारा हमारे कर्मों के अन्धन एक एक टूट पड सकते हैं, यह वह रसा यन है जिसको खाकर एक महा रोगी पुण्य चीतगामी होकर उसी दशास शिखरमणी को पर सकता है—यह वह राग है जिसमें मोहित हो कर सुदुमाल जोका यह न मालुम पडा कि उनकी देह का रङ नाहरी खाही है, यह वह इष्ट है जिस में महो हा जाने से तीन पाडवों १ अपने शरीर को जलते हुए लोह के गहनों से विभूषित होता हुआ भी कोई दुख न मालुम किया—यह वह चट्टा है जिसका खाद ले लने से रामचन्द्र जा अपना स्वा सीता जी का प्रत्यक्ष की पर्याय में रहकर तरह तरह के पाचों इन्द्रियों के स्वादों का नाटक दिखलाये जान पर भी रचमात्र मोहित १ हुए हा । यह क्याही भली भग है कि जिसके रग की तरंग में लहराते हुए एक महात्मा के गल में हजारों चींटियों से लिपटा हुआ मरा साप कई दिन तक पडा रहा पर उनके मत का बाल भी धाका न

तथा अजीव संबंधी, एम वे प्रकारे ठे. पोताने हाथे अथवा श्वानादिक जीवथी तथा शस्त्रादिक अजीवथी जे शशकादिक जीवने मारवा, अथवा कोइ पुरुष अत्यंत अजिमान करीने क्रोधित चित्तवंत थको जे काम पोताना नोकरो करी शके, ते काम पोताना हाथथी करे, ते सोलमी (साहृही के०) स्वाहस्तिकी क्रिया जीव तथा अजीव जेदे वे प्रकारनी ठे.

आणवणि विअरणीआ, अणभोगा
अणवकंखपच्चइआ ॥ अन्ना पज्ज
समुदा, - ण पिज्ज दोसेरिआवहिआ ॥ २४ ॥

गाथा २४ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

आणवणि—आज्ञापनिकी,	अन्ना—अपरा, बीजी.
आनयनिकी.	पभोग—प्रयोगिकी.
विआरणिअ;—विदारभिका.	समुदाण—समुदानकी.
अणभोगा—नाभोगिकी.	पिज्ज—प्रेमिकी.
अणवकंखपच्चइआ—अनव-	दोस—द्वेषिकी.
कांक्षाप्रत्ययिकी.	इरिआवहिआ—इर्यापथिकी.

हुआ। जो इस आनन्द दायनी विद्या को बश में कर लेते हैं उनको न भूख है न प्यास है न रोग है न किसी वस्तु की आशा है। वे सदा ही मस्त रह कर सुख उड़ाते हैं। संसार को जलनी हुई तृष्णा की लपकों से उनके आंचल विलकुल दूर रह जाने हैं। यह वह रत्न है जिसका धनी ईश्वरत्व की पदवी से किसी प्रकार कम नहीं, यह वह मन्त्र है जिसका कर्ता जगन्मोहनी के जेता से तुल्यता करने में असमर्थ नहीं यह वह अग्नि है जिसकी शायू लपक कर्म कण्टों के भस्म करने में अपनी अनुपमता से किंचित् भी दूर नहीं। पाठको ! इस निरुपम ध्यान के विषय का मनन करना परमावश्यक है—जैन मत का दारमदार इसी ही की विरता पर स्थिर है। जो जो सुगम ग्रन्थ मेरे देखने में आए हैं उनमें श्री आनार्याव जी की महिमा अगाध ही विद्रित हुई है। श्रीमान् परमोपयोगी श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित यह ग्रन्थ है। श्री शुभचन्द्राचार्य ने यह ग्रन्थ अपने लघुभ्राता भरथरी के समझाने के हेतु रचा था—राजा भोज जिनके समय में कालिदास व प्रसिद्ध आचार्य श्रीमान् तुंग व धनजय जी हुए हैं इन्हीं के छोटे भाई थे—इन का जीवन चरित श्री भक्तामरचारित्र में भले प्रकार दिया हुआ है।

इस ग्रन्थ में ध्यान का विषय जैसा उत्तम वर्णन किया गया है मुझे विश्वास है मेरे ऐसे अल्प ज्ञानियों के देखने में कम आया होगा—मैं यहाँ उसी की कुछ छाया लेकर अपने विचारवान पाठकों के हेतु किंचित् वर्णन करूंगा—

अनायुक्तप्रमर्जिना क्रिया, एम वे जेदे ठे. पोताना तथा परना हितनी आकांक्षा रहित आ लोक तथा परलोकत्री जे विरुद्ध कार्यनुं आचरण करवुं, ते वीशमी (अणवकंग्वपञ्चइआ. के०) अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया ते स्वअनवकांक्षा अने पर अनवकांक्षा, एम वे प्रकारे ठे. हवे (अन्ना के०) अन्या, एटले पूर्वे वीश कही, तेथी वीजी. मन, वचन, तथा कायाना शुजाशुज. व्यापार-रूप जे क्रिया, तेमां प्रवर्त्तन करवुं, पण निवर्त्तवुं नहीं, ते एकवीशमी (पलंग के०) प्रायोगिकी क्रिया. कोइक एवुं भोटुं पाप करे, के जेथकी आठे कर्मनुं समुदायपणे ग्रहण थइ जाय, ते वावीशमी (समुदाण के०) सामुदायिकी क्रिया अथवा जेना वडे विषय ग्रहण कराय, ते समादान क्रिया पण कहेवाय. माया तथा लोच वडे जे कांइ करवुं, एटले प्रेमनां वचन एवां बोले,

चित्त को एक ज्ञेय की तरफ लगाने का नाम ध्यान है। ज्ञेय वह वस्तु है जो जानने में आ सकती है। यह ध्यान ४ प्रकार का होता है जिनमें दो भेद तो अशुभ अर्थात् छोटे ध्यान हैं और दो शुभ अर्थात् अच्छे ध्यान हैं। दो छोटे ध्यान आर्त और रोद्र हैं। आत ध्यान का यह लक्षण है।

दोहा

दुःख के कारण आवते, दुःख रूप परिणाम।

भोग चाहि यह ध्यानदुर, आत तजो अघभाम ॥

(शा० अ० २५)

भाषा—आत नाम दुःखी होने का है—जह विचार जिससे परिणाम (भाग) दुःखी हो आर्त ध्यान कहलाता है। परिणाम दुःखी होने के ४ कारण हैं १ इष्ट वियोग जिस चेतन व अचेतन वस्तु से हम प्रीति (राग) करते थे अस्वीज, मनुष्य व पशु का हम से जुदा हो जाना और हमारा इसी लिये रज करना (२) अनिष्ट सयोग—जो चेतन व अचेतन चीज हमका बुरी मालूम होती है उसी का साथ होने से हमारा रज करना (३) पीडा चित्तघन रोगादि दुःख होने पर रज करना (४) निदान दूसर की विस्मृत घन दौलत देख कर अपने दिल में रज मानना तथा अपने पास होने की चाहना करना।

दूसरा रोद्र ध्यान है इसका लक्षण यह है—

दोहा ।

पञ्च पाप में हय जो रोद्र ध्यान अघलानि।

पोताना आत्माने नरकादिकमां जावाने वास्ते अधिकारी करे, ते अधिकरणिकी क्रिया. ३ जेमां प्रकर्षे अधिक दोष (द्वेष) होय, ते प्राद्वेषिकी क्रिया. ४ जीवने परिताप आपवाथी जे क्रिया उत्पन्न थाय, ते पारितापनिकी क्रिया. ५ प्राणीकी उने विनाश करवानी क्रिया, ते प्राणातिपातिक्रियो. ६ पृथिवी आदिक ठ कायने लपघात करवानुं जे क्रियामां लक्षण होय, ते आरंजिकी क्रिया. ७ विविध उपाये करी धन उपार्जन करवामां तथा धन रक्षण करवामां जे मूर्हाना परिणाम, तेथी उत्पन्न थयेली जे क्रिया ते पारिग्रहिकी क्रिया. ८ मायाज ठे प्रत्यय एटले हेतु जेनी, एटले मायानी ज्यां प्रधान प्रवृत्ति ठे, ते मायाप्रत्ययिकी क्रिया. ९ मिथ्यात्वज ठे प्रत्यय एटले कारण जेनुं, ते मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया. १० संयमना विघातकारक जे कषाय

आर्त कह्यो दुःख भगनता, दोऊ तज निज जानि ।

भावार्थ—पापों में खुशी मानने के भाव होना सो रौद्र ध्यान है इस विचार के होने के मुख्य ४ कारण हैं [१] हिंसानन्द—अपने मन से, वचन से व काय से दूसरों को स्वयं प्राण पीड़ा करना, व प्राण पीड़ा कराना व प्राण पीड़ा व कोई हानि किसी की सुनके हर्ष मानना [२] मृपानन्द भूड बोल के, बुलाके, व बोला हुआ सुनके खुशी मानना [३] चौर्यानन्द—चोरी करके कगके व कगी हुई सुनके खुशी मानना [४] परिग्रहानन्द—संसारिक सामग्री बढ़ा के बढ़वा के, व बढ़ी हुई देख सुनके आनन्द मानना ।

इन आर्त रौद्र ध्यानों के करने से किसी जीव का कुछ भी भला नहीं हाता बल्कि दुहरी हानि होती है । एक तो इस भव में दुःख होता है दूसरे वह प्राणी ऐसे अशुभ कार्मण परमाणुओं को खींच लेता है जिनका फल अन्यभव में भुगतना हाता है । इस लिये जो कर्मों के संवर व निर्जरा करने वाले ध्यान को करना चाहते हैं उनको यह दोनों ध्यान त्यागने योग्य हैं । ध्यान करने वाले को दो अच्छे ध्यानों को विचार करना चाहिये । १ धर्म ध्यान २ शुद्ध ध्यान । शुद्ध ध्यान के होने लायक भाव इस काल में हमारे नहीं हो सकते हैं । इस कारण इसका वर्णन यहां बिलकुल न कर केवल धर्म ध्यान का वर्णन हम करेंगे ।

अध्याय १९ वां

धर्म ध्यान ।

ध्यान में चार मुख्य बातों को जानना चाहिये १ ध्याता

क्रिया कराय, ते स्वाहस्तिकी क्रिया. १७ श्री अर्हंत जगवंतनी आज्ञा उल्लंघन करी पोतानी बुद्धिशीजीवाजीवादि पदार्थोंनी प्ररूपणा द्वारा जे क्रिया, ते आज्ञापनिकी क्रिया. १८ बीजानां अठतां माठां आचरणने प्रकाश करी तेनी पूजानो नाश करवो, तेथी उत्पन्न थयेली जे क्रिया ते वैदारणिकी क्रिया. १९ (आभोग के०) उपयोग ते थकी जे विपरीत होय, तेने अनाज्ञोग कहीए; तेणे करीने उपलक्षित जे क्रिया, ते अनाज्ञोगिकी क्रिया. २० पोतानी तथा पारकी जे अपेक्षा करवी, तेनुं नाम अवकांक्षा ठे, ते थकी जे विपरीत होय, तेने अनवकांक्षा कहीए; तेज ठे (प्रत्यय के०) कारण जेनुं एटले परमेश्वरे कहेली जे करवा योग्य विधिउं, ते विधिउं मांहेली कोइ कोइ पण विधिउं पोताने अथवा कोइ परजीवने हितकारी ठे, ते विधिउंमां

ध्यान करने वाला २ ध्यान क्या है, घ ष्योकर हो सकता है,
धयय - ध्यान किसकाकर ४ ध्यान का फल, क्या है ।

ध्याता

ध्यात करने वाले का यह लक्षण है ।

सोरठा

जो गृहत्यागी होय सम्यक् रत्नत्रय बिना
ध्यान याग नहि सोय, प्रहवासी की का कथा

(शा० अ० ४)

दोहा

रत्नत्रय को धारि जे, शम दम यम चित्तदेय
ध्यान करें मन रोकि कै, धनिते मुनि शिवलेय ।

(शा, अ ५)

भावार्थ—जो तीन रत्न को अर्थात् सम्यक् दर्शन (भले प्रकार सात तत्वों का अज्ञान) सम्यक् ज्ञान (भले प्रकार सात तत्वों का ज्ञान प्राप्त) सम्यक् चरित्र (भले प्रकार सात तत्वों में आचरण) व धारि हूँ और समता अर्थात् यातगता के धारक पांच इंद्रियों का जन्म पयत्त ल्हाडन वाल ऐस जा मुनि मा को राफ के ध्यात करत ह ये कमा का निजरा करके शिव पद को लन हँ श्वार जिहों ने घन तो छोड दिया पर तीन रत्न तहा धार व कभी ध्यान नहीं कर सफत हँ । उनसे ता ये गृहस्था ही मनी प्रकार ध्यान कर सफते हे जो जो सम्यग्दर्शन सहित प्रता हँ जैसे वा सुदर्शन मठ न अष्टमी

हृत्वे आ पचीस क्रियां कोने कया गुणस्थान सुधी होय ते कहे ठे-

पेहली कायिकी सामान्यपणे कषायोदयवंत सर्व काययोगी जीवोने होय, विशेषपणे अनुप-
रतकायिकी अविरत सुधी होय, अने दुष्प्रयुक्त कायिकी अनुपयोगी मुनिने पण होय, वीजी अधिकरणकी बादर कषायोदयी जीवने होय, माटे नवमा गुणठाणा सुधी होय, त्यां देहपण अधिकरण थाय ठे. त्रीजी प्राद्वेषिकी क्रोधकषायोदयीने (ए मा गु० सुधी) होय. चोथी पारि-
तापनिकी क्रिया बादर कषायोदयी जीवने (ए मा गुण सुधी) होय. पांचमी प्राणातिपातिकी अविरत जीवोने (ए मा गु० सुधी) होय, आ क्रिया हणेलो जीव मरण पामे, तोज लागे, अन्यथा नही. बछी आरंजिकी क्रियां. सर्व प्रमादयोगी जीवोने (६ ठा गु० सुधी) होय.

के दिन नगर बाहर वन में ध्यान लगाया था। हा ! क्या स्थिर ध्यान था कि राजा की अर्द्धांगिनी द्वारा अनेक कष्ट दिये जाने तथा आपत्तियों के भीतर पटके जाने पर भी वे अपने ध्यान को नहीं छोड़ते भए ।

जो मुनि मारणा, उच्चाटन, बशीकरणा, इंद्रजाल, वैद्यक, ज्योतिष आदि क्रियाओं के करने में परिणाम रखते हैं वे कभी धर्म ध्यान नहीं कर सकते हैं। यह ध्यान तो १२ भावनाओं के रस में मगन हो जाने वाले मनुष्योंही के पल्ले पड़ सकता है, अन्यो के नहीं ।

ऐसे ध्यान के चाहने वाले को किस स्थान पर बैठ कर ध्यान करना चाहिये ।

अध्याय २० वां

ध्यान का स्थान

दोहा

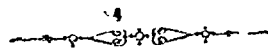
जहां क्षोभ मन ऊपजै, तहां ध्यान नहिं होय ।
ऐसे थान विरुद्ध है ध्यानी त्यागै सोय ॥

भावार्थ

जिस जगह पर बैठने से मन में कुछ भी घबड़ाहटपैदा हो वह जगह ध्यान करने के लायक नहीं है—क्योंकि स्थान के सबब से भी मन विगड़ जाता है व निश्चल हो जाता है। इस लिये ऐसी जगह बैठ कर ध्यान नहीं हो सकता है, जहां

बीसमी अनवकांहाप्रत्ययिकी बादर कषायोदय-
 प्रत्ययिक होवार्थी ए मा गु० सुधी होय. एक-
 बीसमा प्रायोगिकी शुजाशुज सावध योगवा-
 लाने ए मा गु० सुधी होय. बावीसमी समादान
 क्रिया इंद्रिय अव्रतवाळा जीवने ए मा गु० सुधी
 होय. त्रेवासमी प्रेमिकी लोचना उदयरूप हो-
 वार्थी १० मा गु० सुधी ठे. चोवीशमी द्वेषिकी
 बादर कषायोदयवाळाने ए मा गु० सुधी ठे, अने
 पचीशमी इर्यापथिकी ११-१२ अने १३ मा गु०
 वाळा अकषायी जीवने योगमात्रशीज होय ठे.
 ए रीते १३ मा सिवाय १४ क्रिया कया जीवने
 कये गुणस्थाने होय, ते जाणवी.

ए पचीश क्रियां कही, ते पूर्वे कहेला सत्तर
 जेदो साथे मेलवतां आश्रवतत्त्वना बेंतालीश
 जेद याय ॥ इति आश्रवतत्त्वं समाप्तं ॥



मनुष्य स्त्री, नपुंसकों का आना जाना हो, जिस स्थान पर किसी भास मनुष्य का अधिकार हो, जहा भेषधारी साधुओं का रहना हो। जहा का राजा दुष्ट हो तथा जहा जुआरी, आदि व्यसनी जीव आते जाते हों।

ध्यान करने के स्थान तो यह हैं—सिद्ध क्षेत्र—जहा से महान् पुरुषों ने मुक्ति पाई, तीर्थक्षेत्र—जहा, तीर्थंकरों के जन्म तप व ज्ञान कल्याणक हों, समुद्र व नदी के किनार वन के बीच पहाड की चोटी, शालमली वृक्षों के झुंड, जल के बीच टापू, वृक्ष की खोल उजडा धंगीचा, मशानभूमि पहाड की गुफा आदि।

बिना एकान्त स्थान के मन एक ओर नहीं जम सकता है। जो जो विद्वान हुए सब ने एकांत ही में मनन वर विद्या को प्राप्त किया है। विद्यावर तो ग विद्या साधने के लिये जगलों में अकेले रहते थे तब विद्या को सिद्ध कर पाते थे—यूरोप में जो जो प्राचीन विद्या के उद्धारक व प्रचारक हुए हैं सबने एकांत स्थान ही में अपन मन को रप कर काम किया है। Newton (न्यूटन) Buffon (बफन) Wicliffe (वीक्लिफ) Luther (लूथर) Knox (नाक्स) Oliver Cromwell (ओलाइवर क्रामवेल) Wordsworth (वर्डस्वर्थ) Carlyle [कार्लाइल] Goldsmith [गोल्डस्मिथ] Scott [स्काट] Lord Byron [लाड बेरन] Shakespeare [शेक्सपीयर] आदि प्रसिद्ध यूरोपाय विद्वान एकांत स्थान में विचार करने के कारण अपने अपने कृतव्य में उन्नति कर सक—

प्रमुखे करी परिणामने पाम्युं जे शुद्ध उपयोग रूप द्रव्यपाणुं, तेथी जावकर्मना रोधक आत्मानां परिणाम आय ठे, तेने जावसंवर कहीए. तेमां (समिर्शुत्तिपरिसहा के०) समितिगुत्तिपरिसहाः, एटले समिति, गुत्ति अने परिषह, तथा (जश्धम्मो के०) यतिधर्मः, एटले साधुधर्म, तथा (जावणा के०) जावना, तथा (चरित्ताणि के०) चारित्राणि, एटले चारित्र, ते सर्व अनुक्रमे (पणतिपुवीसदसवारपंचनेएहिं के०) पंचत्रिंशतिदशद्वादशपंचनेदैः, एटले पांच, त्रण, बावीश, दश, बार, अने पांच नेदे करी (सगवन्ना के०) सप्तपंचाशत्, एटले सत्तावन नेद संवरना आय. ते विस्तारथी कहे ठेः—तेमां सम्यक प्रकारे जे चेष्टा करवी ते समिति कहेवाय, ते पांच ठे, योगनुं जे गोपन करवुं, ते गुत्ति कहेवाय. ते त्रण ठे. सर्व प्रकारे निर्जराने अर्थे

Jean Paul Richeyr [जीनपाल रिच्यूर]:का कथन है—
 “All worthy things are done in solitude”
 अर्थात् जितने योग्य काम हैं सब एकांत स्थान में ही किये
 जाते हैं ।

Lacordaire [लेकर डेयर] का कथन है—

“I believe solitude is as necessary
 to friendship as it is to sanctity, to ge-
 nius as to virtue”

अर्थात्—मुझे यह विश्वास है कि बिना एकान्त में बास
 किये न सच्ची मित्रता आती है न मानसिक पवित्रता
 प्राप्त होती है, न बुद्धि में तीव्रता और न व्यवहार की सचाई
 आती है । संसारिक उन्नति में भी मन की स्थिरता के लिए
 जब एकान्त कानन प्रिय है तब आत्मिक उन्नति कही एकान्त
 बास के बिना आ सकती है ? कदापि नहीं । इसी लिये जो
 कर्म को निर्जराकारक ध्यान धरा चाहते हैं वे गृहस्थी के वास
 को छोड़कर मोह सर्व वस्तुओं का हटाकर अपने आपही के
 ध्यान में महो हो जाने के लिये ऐसी जगह पर जाकर विचार
 करते हैं जहां उनके मन को संसारिक व्यथा नहीं व्याप सकती
 है । गृहस्थ भी ध्यान का अभ्यास करते हैं इस लिये उनको
 इस अभ्यास के लिये अपने नियत समय तक ऐसी शून्य
 जगह पर बैठ कर मनन करना चाहिये जहां उनके चित्त को
 उसकाने वाला कोई पदार्थ न हो । स्थान ठीक करने के बाद
 ध्यानी को अपना आसन भी ठीक रखना चाहिये ।

गाथा २६ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

इरिया-इर्यासमिति.

भासा-भापासमिति.

इसणा-एपणासमिति.

आदाणे-आदाननिक्षेपणा-
समिति.

उच्चार-पारिष्ठापनिकासमिति

सुसमिईसु-समितिओमां.

अ-अने, वली.

मणगुत्ति-मनगुत्ति.

वयगुत्ति-वचनगुत्ति.

कायगुत्ति-कायगुत्ति.

तहेव-तेमज.

य-अने.

विस्तारार्थः-गाथाना पूर्वाद्धे करी पांच स-
मितिनुं वर्णन करे ठे. तेमां (समिईसु के०) स-
मितिषु, एटवे सम्यक चेष्टा. तेमां १ जयशा
राखी उपयोग सहित धुंसरा प्रमाण ३॥ हाथ
चूमिका द्रष्टि ए जोइने बीज, लोलोतरी, पाणी,
त्रस जीवादिथी सचित्त चूमिने वर्जी जे चाल
वानी चेष्टा करवी, ते पहेली (इरिया के०) इर्या,
एटवे इर्यासमिति कहेवाय. तथा २ जे वचन
सत्य होय, कहेवा योग्य होय, सत्य, असत्य,

अध्याय २१ वां

। आसन

जब तक आसन मजबूत न होगा मन स्थिर न रहेगा, आसन मजबूत रखने से गरमी सरदी पाले आदि की तरह तरहकी पीडा होने पर भी मन नहीं चलायमान होता है—जिन का मन बिलकुल वश में हो गया है उनके लिये आसन का कोई विशेष नियम नहीं है किंतु ध्यान साधने वाले के लिये आसन की मजबूती जरूर होनी चाहिये। ध्यान करने के आसन बहुत से हैं जिनमें दो आसन बहुत सुगम और प्रचलित हैं। १ पर्यंकासन २ कायोत्सर्ग—पर्यंकासन में दोनों पैर के तलवे अपनी जाघों पर खुले मुह ऊपर को किये जमावे और दोनों हाथों की हथेली खुली हुई अपनी गोद में बाएँ के ऊपर दाहिनी रखे—दोनों आँखों को नाक के आगे नोक पर जमावे, भौंहे चलें नहाँ छोठ न बहुत खुले न बहुत मिले हों और मुह रुपी कमल शातरस का टपकानवाला होय। मन में क्या और बैराग भरा हा,शरार सूधा रहे। इस आसन में एसा निश्चल रहे कि दरने घाल को पत्थर की मूर्ति ही मालूम हा। बठ आसन भगवान की प्रतिबिम्ब जा हमारे मंदिरों में धिराजमान रहती है इस पर्यंकासन को भले प्रकार बशाती है—कायात्सर्ग आसन में खडे हों ४ अगुल क अंतर स दाजा पैर बराबर रखकर दाँनों हथेली लटकती हुई मुन्न नत्र की चेष्टा पर्यंकासन कीसा हा। इन दोनो आसनों में एक आसन के जीतन का यत्न अग्रथ्य करना योग्य है।

शब्द ठे, ते कहेवाशी निक्षेप शब्द पण साथे
 लेवो. केनी पेठे ? तो के जेम जीम शब्द कहे-
 वाशी जीमसेन समजाय ठे, तेम अहींयां पण
 जाणी लेवुं. अने ए परठववा योग्य जे मल सू-
 त्रादिक वस्तु, तेने स्थंक्लिच्छूमिकाने विषे उप-
 योगपूर्वक जे सूकवानी चेष्टा करवी, तथा स-
 दोष तथा वधेलां आहार उपकरणादिकने पर-
 ठववानी जे चेष्टा करवी, ते पांचमी (उच्चारं
 के०) उच्चारः, एटले उत्सर्ग समिति पारिष्ठापनि-
 कासमिति कहेवाय. एवी रीते ए पांचसमिति
 ते जाणवी (अ के०) च, हर्ष गाथाना उत्तरार्द्ध वडे
 त्रणगुप्तिनुं वर्णन करे ठे—प्रथम (मणगुत्ति दे.०)
 मनोगुप्तिः, एटले मननुं गोपन करवुं, तेना त्रण
 जेद ठे—तेमां अपध्याने करी. उत्पन्न थयेली
 कल्पनाजालनो जे वियोग, ते अकुशलनिवृत्ति-
 रूप पहेलो जेद, धर्मध्याने करी मध्यस्थपणांनी

दोहा

आसन दृढ़ते ध्यान में, मनलागे इकतान ।
ताते आसन योग्यकूं, मुनि करि धारें ध्यान ॥

(ब्रा० अ० २८)

भावार्थ—जिस आसन के रखने से मुनि का मन निज स्वरूप में लगे उसी आसन को रखकर मुनि आत्मध्यान करते हैं ।

अध्याय २२ वां

प्राणायाम ।

ध्यान करने वाले के लिये यह बहुत जरूरी बात है कि उसका मन थिर हो—क्योंकि बिना मनके स्थिर किए हम कदापि आत्मध्यान नहीं कर सकते हैं । यदि ध्याता ने अपने ज्ञान वैराग्य तथा इन्द्रियों के रोकने से मन को सहजही में वश कर लिया है तो उसके लिये प्राणायाम की जरूरत नहा है—किन्तु जिस ध्याता का मन चंचल है अर्थात् ध्यान करते वक्त वश में भले प्रकार न रहकर विषय कषाय सम्बन्धी तरह तरह के विकल्प भावों के अन्दर जाता है उसके लिये ध्यान शुरू करने के पहिले प्राणायाम का साधन बहुत जरूरी है।

इल प्राणायाम के साधन से लौकिक प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं—किन्तु मोक्ष मार्गपर चलने वाले को लौकिक मतलब से कभी प्राणायाम करना उचित नहीं है—क्योंकि लौकिक प्रयोजन संसारिक रागद्वेष के करने वाले हैं—दुसरे के हानि लाभ को बतलाना, वशीकरण, मारण उच्चाटन, आदि करना

ए उपरशी वचनगुप्ति अने ज्ञाषासमिति ए वे-
उमां एटलुं अंतर ठे, एम जाणवुं; (य के०) च,
अने (तहेव के०) तथैव, एटले तेमज त्रीजी
(कायगुप्ति के०) कायगुप्ति एटले कायानुं गोपन
करवुं, तेना पण वे जेद ठे—उपसर्ग परिसह
आदि उत्पन्न थयार्थी पण जे काया स्थिर रा-
खवी, अथवा चौदमे गुणठाणे योग निरोधाव-
स्थाए सर्वथा शरीरनी चेष्टानो त्याग करवो, ते
चेष्टानिवृत्तिरूप पहेलो जेद, अने शयन, आ-
सन प्रमुखने विषे सूत्रोक्त विधिए करी चेष्टानो
नियम करवो, एटले माथा तले हाथ घाली
गोठण संकोची, कूकनीनी पेठे पग पसरिने
सुवुं, ते यथासूत्रचेष्टानियमिनी नामे वीजो जेद
जाणवो, ए समिति अने गुप्तिना अर्थमां एटलुं
विशेष ठे, के सम्यक् प्रकारे चेष्टारूप जे प्रवृ-
त्ति करवी, ए समितिनुं लक्षण ठे, अने शुभ

तथा पशुपत्नी आदि के शरीर के अवर फिरना आदि काम इस प्राणायाम के द्वारा किए जा सकते हैं—इस प्राणायाम का वरण भी ज्ञानागव प्रथ के २८ वें अध्याय में किया है—इस अध्याय के श्लोक ६८, ६९ व १०० का यह मतलब है कि प्राणायाम का भल प्रकार साधनेवाला योगी एक चित्त होकर भौरा, पतंग, व अडज पक्षी तथा हिरन आदि पशुओं के शरीरों में चला जा सकता है तथा मनुष्य घोड़ हाथो आदि के शरीरों में अपना इच्छा के अनुसार जा सकता है तथा निकल आ सकता है। इसी तरह पत्थरों के अवर भी जा सकता है। यहा तक कि पेसा योगी अभ्यास के बल से शरीर रहित आत्मा को तरह चाहे जहा अपना इच्छा से घूम आ सकता है।

प्राणायाम—पवन (हवा) के साधने को कहते हैं—शरीर में हर जगह हवा घूमती है। मुह व नाक के द्वारा जाती आती प्रत्यक्ष विदित होती है इसी हवा के कारण मन भी चंचल रहता है—इस हवा के रोकने की तरकीब प्राणायाम है—

यह प्राणायाम तीन तरह का होता है।

१ पूरक—हवा का तालू क छेद से खींच कर देह में भरलना।

२ कुभक—इस खींची हुई हवा का नाभि के स्थान पर इस तरह रोकदना जो यह नाभि को छाड़ कर दूसरा जगह ग जाने पावे।

विस्तारार्थः—तेमां प्रथम परिसह शब्दनां अर्थ कहे ठे, जे जैनमार्गने नहीं मूकवाने अर्थ तथा कर्मनी निर्जरा करवाने अर्थ दुःखने (परि के०) समस्त प्रकारे (सह के०) सहन करवुं पडे, तेने परिसह कहीए. व्याकरणमां लख्युं ठे के, “परिसह्यत इति परिसहः” ते परिसह सर्व म-ली वावीश ठे, तेमां एक दर्शनपरिसह अने वीजो प्रज्ञापरिसह, ए वे परिसह तो जैनमार्ग न मूकवाने अर्थ ठे, अने शेष वीश परिसह जे ठे ते कर्मनिर्जरा करवाने अर्थ ठे. ए वावी-शे परिसहोनां अर्थ सहित नाम तथा एक पठी वीजा परिसहने अनुक्रमे कहेवानां कारण कहे ठे.

१ (खुहा के०) कुधा, एटले कुधापरिसह ठे, ते कुधा एवुं चूखनुं नाम ठे, ए चूखत्री उत्पन्न यनारी वेदना वीजी समस्त वेदनाउथी अधिक

३ रेचक— इस हवा को अपने कोठे से धीरे धीरे निकास कर बाहर कर देना । जो हवा नाभि से हटा कर हृदय कमल में होती हुई तालू के छेद के स्थान पर ठहराई जाती है उसको पवन का परमेप्वर कहते हैं ।

पूरक, कुंभक, रेचक का जब बराबर अभ्यास हो जाय तब योगी हृदय के कमल में हवा के साथ अपने मनको जोड़ कर थांभ देते हैं—इस तरह मनको थांभ ने से जबतक मन रुकेगा कोई और भाव पैदा न होकर विषयों की आशा मिट जायगी और मीतर ज्ञान बढ़ता हुआ चला जायगा ।

मन के वश करने के लिये सिर्फ इतना अभ्यास, प्राणायाम का जरूरी है । प्राणायाम के द्वारा लौकिक प्रयोजन साधने के लिये इस २८ वें अध्याय में बहुत सी युक्तिया पवन के वश करने की कही हैं उनका चर्चान में प्राणायाम शीर्षक लेख में किसी समय पर दिखाऊंगा—यहां “ध्यान”, विषय में केवल मन के वश करने का प्रयोजन है—२८ वे अध्याय का सार टीकाकार श्रीमान् पंडित जयचंद, जी ने इस एक कवित्त में दिखलाया है—

कवित्त ।

आसन धान सवांरि करै मुनि प्राणायाम समीर संभार ।
 पूकर कुंभक रेचक साधन निज आधीन सुतत्व विचार ॥
 जगत रीति सम लखै शुभाशुभ अपने हानि बृद्ध निरधार ।
 मन रोके परमात्म ध्यावै तब यह सफल न आन प्रकार ॥

३ (सी के०) शीतं, एटले शीतपरिसह. ते
 क्षुधा तथा तृषाण पीकितने शीतपणुं थाय, माटे
 त्रीजो शीतपरिसह गणयो ठे. तेमां शीत काल-
 ने विषे जे वारे अत्यंत टाढ पडे, ते वारे कटप-
 नीय वस्त्रने अज्ञावे गृहादिके रहित ठतो पण
 अकटपनीय वस्त्रनी बांठा न करे, तथा पोते
 अग्नि प्रदीप्त करी तापे नहीं, तेमज बीजाए प्र-
 दीप्त करेला अग्निथी पण तापे नहीं, परंतु अटप
 जीर्ण वस्त्र करी सम्यक् परिणामे शीत सहन करे.

४ (उएहं के०) उष्णं, एटले उष्णपरिसह.
 ते उष्ण ऋतु जे ठे, ते पूर्वोक्त शीत ऋतुनी वि-
 पक्षीचूत ठे, माटे शीत पठी ए चोथो उष्णपरि-
 सह गणयो ठे. तेमां उष्ण कालने विषे तप्त
 शिलाए रह्यो ठतो सूर्यनुं प्रतिबिंब माथे आवे,
 एवा मध्यान्ह समये अत्यंत आतापना थये थके
 पण ठत्रनी अथवा लूगरांनी ठायाने तथा

भावार्थ, यही — कि आसन और स्थान ठीक कर प्राणायाम केवल मन के बस करने के लिए ही करना उचित है जिस में हम शुद्धात्मा का विचार कर सकें ।

अब ध्याता के लिये, प्रत्याहार धारणा की भी आवश्यकता है—

अध्याय २३ वां

प्रत्याहार धारणा ॥

मन को एक ठिकाने राक कर रचना और उसमें ध्येय [ध्यान करने योग्य पदार्थ] का ठहराना सो प्रत्याहार धारणा है ।

दोहा ।

भाल आदि दशधान में ध्येय थापि मनलार ।

प्रत्याहार, जुधारणा, यहै ध्यान विधिसार ॥

(छा० अ० २६)

देह के भीतर मनको ठहराने के लिये दस जगह हैं—
जैसा कहा है ।

मदाक्रांता छंद ।

नेत्रद्वये अक्षणयुगले नाशिक्राग्रे ललाटे, वक्त्रेनामौ शिरसि
हृदये तालुनेत्रे युगाते । ध्यानस्थानान्यमलमत्रिमि कीर्ति
तान्यत्र दहे तत्रं कस्मिन् विगत विषय चित्तमालयायम् । १३

[छा० अ० २६]

६ (अचेलरइत्थिओ के०) अचेलारतिस्त्रियः, एटले अचेल, अरति अने स्त्रीसंबंधी परिसह तेमां प्रथम अचेलकपरिसह. ते पूर्वोक्त दंशादिके पराजव पाम्यो थको पण वस्त्रने बांढे नहीं, तेथी अचेलकपरिसहने ठठो गएको ठे. अचेलक एटले शुं? तो के (चेल के०) वस्त्र तेनो (अ के०) अजाव ते अचेलक जाणवो. आ ठेकाणे सर्वथा वस्त्रोनो अजाव होय, तेनुंज नाम अचेलकपरिसह नथी, परंतु आगममां जे जे वस्त्र राखवानुं प्रमाण कह्युं ठे, ते प्रयाणे राखे, तो तेने अचेलकपरिसह कहेवो. हवे त्यां शंका करे ठे के, जो कांइ पण वस्त्र राखे, तोपण ते परिग्रहज कहेवाय. त्यां कहे ठे, के जो मूर्धा सहित वस्त्र राखे, तो परिग्रह कहेवाय, परंतु मूर्धा रहित अपरिग्रहपणाए शास्त्रोक्त रीते राखे, तो अचेलक जाणवो. तेमां साधुने फाटेबुं

भावार्थ—मन ठहराने के १० स्थान यह हैं १ दोनों आँखें २ दोनों कान ३ नाक की नोक ४ माथा ५ मुँह ६ नाभी ७ सिर ८ हृदय [दिल] ९ तालू १० दोनों भौंहों के बीच का भाग ॥ इन में से किसी जगह मनको रोक कर ध्येय (परमात्मा) का विचार करना है सो प्रत्याहार धारणा है ।

ध्याता आसन, स्थान, प्रत्याहार धारणा को ठीक करने के पीछे इस बात की प्रतिज्ञा अपने चित्त में करता है कि मैं अनादि काल से कर्मरूपी जाल से बँधा हूँ, इसी से संसार में नाना प्रकार के दुःख अविद्या के कारण पाए—मेरा स्वभाव परमात्मा के समान ज्ञाता द्रष्टा है किन्तु कर्म की रज से मैला हो रहा है। अब मैं ध्याय के बल से कर्मों को नाशकर अपने स्वरूप को ध्यान लेऊँ। इस तरह मन में कह कर वह ध्यानी रागद्वेष अपने चित्त से हटा धर्म ध्यान करना प्रारम्भ करता है।

अध्याय २४ वां

ध्येय ।

जिस का ध्यान किया जाय—उसको ध्येय कहते हैं यह लोक छः द्रव्यों का ढेर है। जितनी दशाएँ इस जगत में दिखालाई पड़ती हैं सब छ द्रव्यों के ही सम्बन्ध से पैदा हुई हैं—जिन में १ जीव तो चेतन ज्ञान दर्शन मई द्रव्य है बाकी पांच पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल अचेतन याने

ध्यावे, श्री दशवैकालिकनी प्रथम चृत्तिकाली
 अठार वस्तुनुं चितवन करवाथी अरति पूर
 याय ठे, ते प्रमाणे चितवन करी अरति पूर
 करे तथा ७ स्त्रीपरिसह. ते पूर्वोक्त संयमने
 विषे अरति उत्पन्न थवाथी स्त्री निमंत्री तेनी
 अजिलापा करे, माटे अरति पठी आठमो स्त्री
 परिसह गण्यो ठे. तेमां स्त्रीजने दीठां थकां
 तेनां अंग, प्रत्यंग, संस्थान, सुरति, हसवुं, म-
 नोहरपणुं, ललित विभ्रम, विलासादिक चेष्टाजने
 अणचिंतवतो थको रहे, स्त्रीजने मोक्षमार्गमां
 अर्गला समान जाणी, तेणे कामबुद्धिए करी
 दृष्टि साथे दृष्टि मेलवी जूवे नहीं, तथा पोतानी
 विषयेह्या पूर्ण करवा माटे करेला उपद्रवने स-
 हन करवा, ते स्त्रीपरिसह.

ए (चरित्रा के०) चर्या, एटले चर्यापरिसह.
 चर्या एटले चालवानुं नाम ठे. तेमां एक स्थले

जड़ है। धर्म ध्यानी को इन छहों द्रव्यों में से अलग कर
चेतन द्रव्य को भले प्रकार विचारना चाहिये—

चेतन द्रव्य दो तरह का है १ ससारिक २ सिद्ध। जो
जीव कर्मों से लिपे हुये जनम मरण करते रहते हैं ससारी
हैं। जिनके कर्म का मेल नहीं यह सिद्ध परमात्मा है—

ध्यान करने वाला अपनी आत्मा को समार की अवस्था
में कमा से लिपा देखता है। और जब अपनी आत्मा को
असली स्वभाव पर जाना है तो अपनी आत्मा और सिद्धात्मा
में कोई भेद नहीं पाता है—सिद्ध परमात्मा शुद्ध आत्मा है
जिनके कोई कर्म का मेल तथा किसी प्रकार का राग छैप
नहीं है।

अध्याय २५ वा

ध्यान और उसका अन्तिम फल।

जिस के ज्ञान में तीन लोक की सब चीजें इसी तरह
भलकती हैं। जन्म निर्मल दर्पण में नामने की सब चीजें भलक
जाता है जो इन्द्रियों के द्वारा नहीं ग्रहण में आता तथा
जो ज्ञान की अपेक्षा साकार तथा पुद्गल शरीर की अपेक्षा
निराकार है—इस परमात्मा में जो जो अन्तरङ्ग गुण है वे
सब आत्मजनित मुख्य २ गुण पुद्गल शरीर सहित अरहत
में भी हैं—अरहत य सिद्ध का आत्मा की तरह गुण धारने
वाला अपनी आत्मा का विचारता। इस तरह ध्यान करते
करत ध्याता की आत्मा परमात्मा स्वरूप में हो सकती है—

कहीए. अहींयां शून्य घर, स्मशानादिक सर्प-
 विल, सिंहगुफादिकने विषे कायोत्सर्गें रद्ध्या
 थका त्यां नाना प्रकारना उपसर्गना सद्भावे पण
 अशिष्ट चेष्टानो निषेध कस्वो अर्थात् माठी
 चेष्टा न करवी, तेने नैषेधिकीपरिसह कहीए.
 अथवा कोष्ट ठेकाणे निषद्यापरिसह पण कह्यो
 ठे, ते निषद्या एवुं रहेवाना स्थानकनुं नाम ठे
 त्यां म्त्री, पशु, पंरुक वर्जित स्थानमां रहेतां थकां
 जो इष्टानिष्ट उपसर्ग थाय, तोपण पोताना
 चित्तमां चलायमान न थाय, परंतु ते सर्व उप-
 सर्गने बद्देग रहितपणे सम्यक् रीते सहन करे,
 ए नैषेधिकी अथवा निषद्यापरिसह.

११ (सिद्धा के०) शय्या, एटले शय्यापरि-
 सह. ते पूर्वोक्त नैषेधिकीए स्वाध्याय करी श-
 य्याए आवे, माटे अगीयारमो शय्यापरिसह
 गण्यो ठे, जेने विषे शयन करीए, तेने शय्या

अर्थात् अभ्यास करते करते कुछ दिनों में ध्यान करने वाले का द्वैत भाव (मैं आत्मा किसी परमात्मा का ध्यान करता हूँ) नाश हो जाता है। उसके फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय में कुछ भेद नहीं रहता अर्थात् अद्वैत भाव (एकी भाव) में प्राप्त हो कर्मों का नाश कर डालता है।

दोहा

पौरुष कर ध्यावै मुनी, शुद्ध आत्मा जोय ।

कर्म रहित वर गुन सहित, तब तैसाही होय ॥

(ब्रा० अ० ३०)

भावार्थ—मुनि यतन करके अपनी आत्मा ही के स्वभाव में लीन होते हैं। अपनी ही आत्मा को शक्ति अपेक्षा शुद्ध कर्मों से दूर, विचारते हैं तब तैसे ही याने शुद्ध आत्मा हो जाते हैं, इस लिये ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य सिवाय शुद्ध आत्मा के और कोई वस्तु नहीं है—इस शुद्ध आत्मा का ध्यान इस प्रकार विचार कर करना जैसे इस छुप्पे में कहा है।

छुप्पे

जड़ चेतन मिलि हैं अनादि के एक रूप जिम । मूढ़ भेद नहि लपै प्रकृति मिथ्यात्व उदैइम । जिन आगम तै चिन्ह भेद जानै लहि अवसर । अनुभव करि चिद्रूप आप अर अन्य सकल पर । जब अंतर आतम होय करि करै शुद्ध उपयोग मुनि । तब शुद्ध आत्मा ध्यान करि लहै मोक्ष सुख मय अवनि ।

(ब्रा० अ० ३१)

वचन कहे ठे, ए मारो उपकारी ठे, केमके मने आ प्रमाणे ए शिक्षा आपे ठे, तेथी फरी हुं एवुं काम नहीं करीश, अथवा ए पुरुष जे कहे ठे, ते तो हुं करतो नथी, तथापि मारे एनी उ-पर जे कोप करवो ते युक्त नथी, एम चितवी क्रोध न करे, एम सम्यक् रीते आक्रोश सहन करे.

१३ (वह के०) वधः, एटले वधपरिसह. ते पूर्वोक्त आक्रोशनो करनार जे होय, ते वध पण करे, माटे आक्रोश पठी तेरमो वधपरिसह ग-एयो ठे. तेमां कोइ दुरात्मा आवीने साधुने ढांका, पाटु, चाबक, कशादिकना आकरा प्र-हार करे, अथवा वध करे, तोपण स्कंदसूरिना शिष्योनी पेरे तेना उपर बिलकुल रोष आणे नहीं, परंतु अकल्पित चिंतवंत थको एवी चिंतवना करे, के ए मारुं शरीर तो पुद्गलरूप ठे, ए तो अवश्य विध्वंस थवानुं ठे, अने मारो

भावार्थ--चेतन और कर्म आदि जड वस्तु का मेल अनादि काल याने हमेशा से ऐसा हो रहा है कि दोनों एक में एक हो रहे हैं—जो कि शरीर को ही आत्मा जानते हैं ऐसे जीव इस के भेद को नहीं पाने हैं। जैन शास्त्रों के उपदेश से आत्मा की ओर जड की अलग अलग पहचान को जान कर जो और सब चीजों से मन हटा आत्मा का विचार करते हैं वे अतरात्मा हो जाते हैं। इस तरह अपने उपयोग (भाव) का शुद्ध करते करते और शुद्ध आत्मा में अच्छी तरह लीन होते हाते मोक्ष सुख की भरी अवस्था को प्राप्त करते हैं अर्थात् ससार के दुःख के प्रसार से छुटकारा पा जाते हैं।

अध्याय २६ वां ।

निराकार का ध्यान साकार के द्वारा ही हो सकता है ।

यहा पर एक यात विचार करने की यह है कि आत्मा और परमात्मा दोनों का स्वरूप निराकार है यान सामने दिखलाई नहीं पडता, इससे एकाएक मन का आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप में धरावर लग रहना कठिन है। इस लिये साधने वालों के लिये निराकार का ध्यान त्रिना किसी साकार वस्तु पर मा लगाय नहा, हा सकता है जैसा कहा है।

अलक्ष्यं लक्ष्यं सर्वथात्,
स्थूलात्सूक्ष्मं विचिंतयेत् ।
सालथाच्च निरालम्बं,
तत्त्व वित्तत्वमजसा ॥ ४ ॥

ना करे, परंतु एवुं चिंतवे नहीं जे, रांधेला धान्यने अर्थे जला माणसने घेर जइ याचना करवी, ते करतां तो गृहस्थावासमां रद्देवुंज जलुं, के ज्यां आपणा जुजदंरुना पराक्रमथी उपजाव्युं जे अन्न, ते दीन हीनादिकने आपी पठी जमीए, एवी विचारणा करीने गृहस्थपणाने इठे नहीं, अथवा याचना करतां कोइ आपशे, किंवा नहीं आपशे, तो हुं आ गृहस्थने घेर जइ लाखनो मर्म गमावीने शी रीते याचना करुं? इत्यादिक चिंतवना न करतां याचना करे ॥ १७ ॥

अलात्र-रोग-तणफासा, मल-सक्कार-परीसहा ॥ पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ वावीस परीसहा ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो अपने लखने याने जानने में आवें उसके द्वारा जो कि प्रत्यक्ष लखने में नहीं आ सकता उसको विचारे, (स्थूल) इंद्रियों के मालूम करने में जो आवे उस के द्वारा सूक्ष्म—(जो इंद्रियों के जानने में न आवे) को विचारे । इसी तरह सालंब (किसी सहारा लेने वाली चीज़) के द्वारा निरालंब (जो किसी के सहारे नहीं है) ऐसे परमात्मा को जाने-तत्व पर पहुंचने का यह मार्ग है—इसी लिये किसी साकार चिन्ह की आवश्यकता है जिस के द्वारा हम निज आत्मा व परमात्मा का ध्यान कर सकें ।

धर्मध्यान माधने के मुख्य नियम ।

पाठकों ! शुद्ध परमात्मा में लय हो जाने के लिये ४ प्रकार का आलम्बरूप मार्ग है जिस के द्वारा हमारा अभ्यास क्रम क्रम से निराकार आत्मा पर जम जाता है—

वे यह है—पिंडस्थ, २ पदस्थ, ३ रूपस्थ ४ रूपातीत ।

अध्याय २७ वां

पिंडस्थ ध्यान मार्ग ।

इस पिंडस्थ ध्यान में ५ प्रकार की धारणा है ।

१ पार्थिवी २ आग्नेयी ३ आश्वासनी ४ बारुणी ५ तत्त्व-रूपवती ।

पार्थिवी धारणा स्वरूप ।

इस मध्यलोक के समान बड़ा एक समुद्र विचार कर जो कि क्षीर समुद्र के समान सफेद रंग का, ठहरा हुआ,

ठतां तेने गृहस्थ आपे नहीं, ते वारे ढंढणकु-
मारनी पेठे चित्तमां उद्देग करे नहीं, विषाद
न करे, मुखराग फेरवे नहीं, तेमज न आपनार-
नुं मातुं पण चिंतवे नहीं, दुर्वचन पण बोले
नहीं, अने समता धारण करीने मनमां विचारे
जे, आजे नहीं मद्युं, तो काले मली जशे. जे
वारे मलशे, ते वारे लइशुं. ए रीते अलाजप-
रिसह सहे.

१६ रोगपरिसह. ते पूर्वोक्त अलाजथकी
आंतप्रांत भोजने करी रोगोत्पत्ति थाय, माटे
अलाज पठी सोलमो रोगपरिसह गण्यो ठे. ते-
मां साधुने जे वारे कास, श्वास, ज्वर, अति-
सारादिक रोग उपजे, ते वारे जे गह्व वाहिर
जिनकदपी साधु होय, ते तो चिकित्सा करवा-
नी इत्था पण न करे, अने पोतानां कर्मनो वि-
पाक चिंतवे, परंतु जे स्थविरकदपी गह्ववासी

बिना किसी लहर उठे व बिम्बी गर्जना के हो। इस समुद्र के बीच में एक कमल हजार पत्तों का विचार करे जो कि सुवर्ण के रंग समान चमकता हो, तथा जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन के व्यास (Diameter) सहित हो, इस कमल के बीच में एक बहुत पीले रंग की कर्णिका विचार करे जो कि सुमेरु पर्वत के समान हो—इस कर्णिका के ऊपर रफता हुआ, १ सफेद रंग का चन्द्रमा के भासिक चमकता हुआ सिंहासन विचार करें—इस सिंहासन के ऊपर अपने को बैठा हुआ इस हातत म देखें कि मैं शात रूप बिना किसी घबडाहट के हू तथा मैं अपनी आत्मा पर लगी हुई कर्मरूपी कालिमा के नाश करने के लिये यतन कर रहा हू। इतना विचार बार बार करने से पार्थिवी धारणा का जमाव चित्त में हो जाता है। जब इस का अभ्यास पूर्णरूप में हो जाता है तब आग्नेयी धारणा का विचार किया जाता है।

आग्नेयी धारणा ।

उसी ऊपर कहे हुए सिंहासन के ऊपर बैठा हुआ योगी अपने नाभिमण्डल के अन्दर १ कमल १६ पाखण्डी का बहुत मनोहर ऊँचे की ओर मुह किया हुआ विचार करे, इस कमल के हर एक पत्ते पर एक एक श्वर लिखा हुआ विचारे। याने सोलह पत्तों पर यह १६ स्वर देखे। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ। और इसी कमल की कर्णिका के बीच में (ॐ) —चन्द्र बिन्दु और रेफ करके सहित ह—का विचार करे। यह है अक्षर बहुत चमकता हुआ

शरीरने लागे, तेथी पीमा उत्पन्न थाय, तोपण दुःख चिंतवे नहीं, समाधिनो त्याग करे नहीं.

(मलसत्कारपरिसहा के०) मलसत्कारपरिसहो, एटले मलपरिसह अने सत्कारपरिसह, तेमां मलपरिसह. ते पूर्वोक्त तृणस्पर्शे करी परसेवाने संयोगे मल उपजे, माटे तृण पठी अढारमो मलपरिसह गण्यो ठे. अहींयां परसेवाना पाणीए करी साधुना शरीरने विषे रजनो कठिन मेल बंधाइ जाय, ते घणो मेल उष्ण कालना तापने संयोगे परसेवाथी चींजाइने दुर्गंधे गंधाय, तोपण ते दुर्गंधने दूर करवा सारु स्नानादिकनी इहा करे नहीं. बली एथकी वयारे हुं वूटीश, एवी चिंतवना पण न करे.

१ए सत्कारपरिसह. ते पूर्वोक्त मलव्याप्त पुरुष कोइ पवित्र अंगवादानो सत्कार थतो देखी कांइक पोते पण सत्कारादिकनी वांठा करे, माटे

देखे। इस ॐ की रेफ से धीरे-धीरे निकलती हुई धूप की लौ को विचारे और फिर यह धूआँ आग के फुलिंगों की। सूरत में होता हुआ लौ की दशा में बढ़ता जाय और योगी अपने हृदय के बीच में नीचा मुंह किये एक आठ पाखड़ी का कमल विचारे यह आठ पाखड़ी आठ कर्म को दिखलाने वाली जाने—और यह देखे कि वह रेफ से पैदा हुई आग इस आठ कर्म रूपी आठ पत्तों के कमल को जला रही है फिर यह देखे कि यह आग इस कमल को जलाते जलाते बाहर देह के आकर त्रिकोण (Triangle) रूप हो गई। जिस में अग्नि का बीजाक्षर रेफ फैला हुआ तथा साथिये का चिन्ह बना हुआ है और जो ऊपर की ओर लोने की चमक के साफिक चमकदार लौ को निकाले हुए बिना किसी धुएँ के जल रही है इस तरह यह विचारे कि यह रेफ से निकली हुई आग अन्दर मेरे कर्माँ के कमल को और बाहर इस शरीर को जला रही है और जलाते जलाते दोनों को भस्म की दशा में कर दिया है और तब यह आग अपने आप धीरे-धीरे ठंडी हो बुझ गई है—इतना विचार बार-बार करना सो आग्नेयी धारणा है।

आश्वासनी धारणा ।

जब ऊपर कही हुई धारणा का अच्छी तरह अभ्यास हो जाय। तब वह योगी यह विचार करे कि बहुत तेज़ हवा चल रही है जिसने बादलों को फोड़ कर समुद्र के पानी को चलायमान कर, पर्वतों को कम्पाकर तमाम जगत में फैल कर खलबली पैदा कर दी है और उसी पवन ने इस

कखुं ठे, माटे हुं समस्त मनुष्योमां जाण हुं, सर्वना पूत्रेला प्रश्नोना उत्तर हुं आपुं हुं, एवो गर्व न करे, अने प्रज्ञाने अज्ञाने मनमां उद्वेग पण न करे, ते जेमके हुं मूर्ख हुं, कांइ पण जाणतो नथी, सर्वने पराजवनुं स्थानक हुं, को-इए पूठया थका जीवादि पदार्थनां नाम पण जाणतो नथी, एवी दीनता मनमां न करे, परंतु पूर्वकृत कर्मनुं स्वरूप चिंतवे, तो परिसह पीडे नहीं।

११ (अन्नाण के०) अज्ञानं, एटले अज्ञान परिसह. ते पूर्वोक्त प्रज्ञानी पेरे अज्ञान पण सहन करवुं माटे प्रज्ञा पठी एकवीशमो अज्ञान-परिसह गणयो ठे. वस्तुनुं तत्त्व श्रुतज्ञाने जणाय ठे, तेनो जे अज्ञाव ते अज्ञानपरिसह कहीए. ते आवी रीते ठे—के साधु मनमां एम न जाणे, जे में अव्रतिपणुं त्यागीने व्रतिपणुं अंगीकार कीधुं ठे, तोपण हुं कांइ जाणतो नथी,

योगी के जले हुए आठ कर्म रूपी कमल और शरीर की भस्म को एक झोंके में उड़ा दिया है, और फिर यह हवा धीरे धीरे शांत हो गई है—इतने विचार को आश्वासनी व मारुत धारणा कहते हैं ।

वारुणी धारणा ।

जब आश्वासनी धारणा का अच्छी तरह अभ्यास हो जाय तब वही योगी यह विचार करे कि आकाश में मेघ छा गय । गजना होने लगी तथा विजली चमकने लगी और फिर मोती के समान मोटी मोटी साफ पागो की बूंदें बराबर बपने लगीं ऐसी कि जिस चर्पा ने विलकुल छा लिया तथा जिसमें अर्द्ध चंद्रमा का सा प्रकाश बन गया फिर यह देखे कि यह (ध्यानरूपी) जल मेरी आत्मा पर लगा हुआ भस्म रज को धो रहा है और आत्मा को साफ कर रहा है—इस प्रकार विचारना सो वारुणी धारणा है ।

तत्परूपवती धारणा ।

जब योगी को ऊपर कहीं हुई वारुणी धारणा का अभ्यास हो जाये तब यह योगी विचार करे कि मेरी आत्मा नवर्ष कर्मों से रहित व सात धातु मयी शरीर से रहित शुद्ध होकर उसी सिंहासन पर बहुत साफ गौरवण पुरुष के आकाश शोभा समुक्त विराजमान है । तथा इंद्रादि मेरी आत्मा की पूजा कर रहे हैं और मैं अपनी निमल चंद्रमा की किरण समान आत्मा ही में लीन हूँ—इतना विचार सो तत्परूपवती धारणा है ।

स्फुरवुं, तेने प्रज्ञा कहे ठे, अने त्रिकाल विषयिक वस्तुना अजाणपणाने अज्ञान कहे ठे.

१२ (सम्मत्तं के०) सम्यक्त्वं, सम्यक्त्वपरिसह ते पूर्वोक्त अज्ञानने लीधे सम्यक्त्वदर्शनने विषे शंका थाय, माटे अज्ञान पठी बावीशमो सम्यक्त्वपरिसह गण्यो ठे. तेमां शास्त्रमां सूक्ष्म विचार सांजली तेने विषे असद्वहणा करवी नहीं, तथा देव, गुरु, अने धर्म, तेने विषे असद्वहणा करवी नहीं, अथवा शास्त्रमां देवता अने इंद्रादिक सम्यग्दृष्टि ठे, एवुं सांजलीए ठीए, तोपण कोइ सान्निध्यकारी अतो नथी, माटे शुं जाणीए देवता अने इंद्र ठे, किंवा नथी? एवी असद्वहणा करवी नहीं, तथा अन्यदर्शनीउनी रुद्धि वृद्ध्यादिक उन्नति तथा तपश्चर्यादिक कष्ट प्रमुख देखीने मूढदृष्टि थावुं नहीं, तेने सम्यक्त्वपरिसह कहीए. (इअ के०) एते, एटले ए प्रकारे (बावोस के०) द्वाविंशतिः, एटले बावीश (परिसहा

इस प्रकार पिंडस्थ ध्यान के अभ्यास किये जाने से यह आत्मा निजानन्द को पाता हुआ थोड़े ही समय में मोक्ष के अविनाशी सुख को पालेता है। इस पिंडस्थ स्थान की महिमा अगाध है—इसके अभ्यास करने वाले को मंत्र, यंत्र, सिद्ध, सर्प, व और कोई उपद्रव अपना कुछ असर नहीं कर सकते हैं।

इस पिंडस्थ ध्यान की महिमा इन श्लोकों से जाननी चाहिये।

आर्याल्लन्द

इत्यविरतं सयोगी
पिंडस्थे ज्ञातनिश्चलाभ्यासं ।
शिवसुख मनन्यसाध्यं
प्राप्तोत्पचिरेण कालेन ॥

शार्दूलविक्रीडित

विद्यामंडलमंत्रयंत्रकुहुकू
कूराभिचाराः क्रियाः ।
सिंहासी विपदैत्य दंति सरभा
यांत्येवनिःसारतां ॥
शाकिन्यो गृहराक्षसप्रभृतयो
मुंचंत्यसद्वासनां,
एतद्ध्यानधनस्थ सन्निधिवशा
द्धानोर्यथा कौशिकाः ॥

पुरुषवेदना उदयश्री स्त्रीपरिसह थाय ठे, चोथो जयमोहनीयना उदयश्री नैपेधिकीपरिसह थाय ठे, पांचमा जुगुप्सामोहनीयना उदयश्री अचेलकपरिसह थाय ठे. ठठो मानमोहनीयना उदयश्री याचनापरिसह थाय ठे, सातमो लोभमोहनीयना उदयश्री सत्कार पुरस्कारपरिसह थाय ठे. तथा १ क्रुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश, ६ चर्या, ७ शय्या, ८ मल, ९ वध, १० रोग, ११ तृणस्पर्श, १२ अगीयार परिसह वेदनीय कर्मना उदयश्री थाय ठे, शेष कर्मने विषे परिसहनो अवतार नथी. ए प्रकारे बावीश थया.

हवे चौद गुणठाणाने विषे परिसहोने समवतारी देखाडे ठे, तेमां ए क्रुधादिक बावीशे परिसह यावत् वादरसंपराय नामे नवमा गुणठाणा सुधी थाय ठे, अने सूक्ष्मसंपराय नामे दशमे गुणठाणे तो पूर्वोक्त चारित्रमोहनीयना

दोहा

या पिंडस्थ ध्यान के माहि,
 देह विषै चित आतम चाहि ।
 चितवै पच धारणा धारि,
 निज आधीन चित्त को पारि ।

अध्याय २८ वां

पदस्थ ध्यान ।

पदों को आधय लेकर जो ध्यान किया जाय उसको पदस्थ ध्यान कहते हैं—ध्यान करने वाला अपने योग्य स्थान तथा आसना ठीक करके यह विचार करता है कि मेरे नाभि मंडल में सोलह (१६) पत्रों का १ कमल है। इन १६ पत्रों पर १६ स्वर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ अ अ) लिखे हुए हैं और यह स्वर इन पत्रों के ऊपर घूम रहे हैं और हृदय के बीच में इसी तरह एक दूसरा कमल २४ पत्रों का है। इस कमल के बीच में १ कर्णिका है। यह २४ पत्रे और कर्णिका इन २५ जगहों पर कण्ठ से पद्मग तक २५ अक्षर लिखे हुए हैं अर्थात् (क ख ग घ ङ, च छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, रा, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म) फिर वह ध्याता अपना मुख में १ आठ पत्रों का कमल देखे इन पत्रों पर यह देखे कि य, र, ल, व, श, ष, स, ह, यह आठ अक्षर लिखे हुए हैं और घूम रहे हैं। इस तरह

प्राणाने विषे सम काले वीश परिसहनो उदय
 थाय अने जघन्यत्री तो शीत अथवा उष्ण
 तथा चर्या अथवा निषद्या, ए चार मांहेला ए-
 कनोज उदय थाय, केमके ज्यां शीत होय, त्यां
 उष्ण न होय, अने ज्यां चर्या होय, त्यां निषद्या
 न होय, इत्यादिक मांहेलो एक थकां वेनो अ-
 चाव होय, ए परिसह मांहेला एक स्त्री, वीजो
 प्रज्ञा, वीजो सत्कार ए त्रण परिसह अनुकूल
 जाणवा, अने शेष उगणीश परिसह प्रतिकूल
 जाणवा. वली स्त्री तथा सत्कार ए वे चाव शी-
 तलपरिसह ठे, अने शेष परिसह उष्ण ठे. इति
 परिसह विचार संपूर्ण ॥

हवे दश प्रकारे यतिधर्मनुं वर्णन करे ठे.

खंती महव अजाव, मुत्ती तव संज-
 मे अ बोद्धवे ॥ सच्चं सोअं आकिं,
 चणं च बंजं च जइधम्मो ॥ १९ ॥

सर्व (१६ + ३३) ४६ अक्षरों के मंत्र का विचार करना सो पदस्थ ध्यान में वर्णमातृका का ध्यान है—

सर्व भ्रुतज्ञान को उत्पत्ति इन ४६ अक्षरों से होती है इस लिये इस ध्यान के बहुत दिनों के अभ्यास से ज्ञान की बढ़-चारी होने लगती है यहाँ तक कि संयमी मुनि भ्रुतज्ञान के पार पहुँच जाते हैं—अतिरिक्त इस ज्ञान वृद्धि होने के इस ध्यान के अभ्यास से शरीर के रोगों की भी शान्ति होती है ।

स्वामी शुभचंद्राचार्य का वाक्य है कि—

जापाज्जयेत् क्षयमरोचकमग्निमाद्य ।

कुण्टोदरात्मकसनस्वसनादि रोगान् ॥

प्राप्नोतिवा प्रति मवाग्महती महद्वयः ।

पूजां परत्रच गतिं पुरुषोत्तमाप्तं ॥

भावार्थ—इस वर्णमातृका से क्षयी अग्नि की मंदता, कुण्टोदर, कास स्वास, आदि रोग जीते हैं, अच्छी वचन शक्ति प्राप्त होती है तथा उत्तम गति को पाते हैं ।

इस पदस्थ ध्यान में बहुत प्रकार के पद ध्यान करने योग्य कहे गये हैं—यहाँ उनमें से कुछ और वर्णन किये जाते हैं—

पद—हं—जिससे प्रयोजन अर्हंतका है । इस मन्त्र पदको अपने हृदय के बीच एक सुवर्ण मई कमल के बीच की करिंका में ठहरा हुआ सफेद रंग का विचार करे फिर इसी को धीरे धीरे ऊपर को उठता हुआ देखे और यह उठकर दोनों भौहों के बीच में आकर चमके, फिर मुंहरूपी कमल में जाता हुआ तालू के छेद से अमृत मई जल को वर्षाता हुआ निकले फिर

पांचमो (तत्र के०) तपः, एतद्वे तपोधर्म. (य के०) च, बली प्राणातिपातादिक पांचनुं जे विरमण तथा पांच इंद्रियोनो निग्रह, चार कषायनो जय अने त्रण दंमनी निवृत्ति, ए सत्तर जेदे ठठो (संजमे के०) संयमः, एतद्वे संयमधर्म. सत्य जा-
 पण करवुं ते सातमो (सच्चं के०) सत्यं, एतद्वे सत्यधर्म. तथा शरीरना हाथ पग प्रमुख पवित्र राखवा अने जात पाणी प्रमुख वेंतालीश दोष-
 रहित आहार लेवो, ते सर्व द्रव्यथी शौच अने आत्मानो जे शुद्ध अध्यवसाय-कषायादिके र-
 हित शुद्ध परिणामनी वृद्धि, ते जावशौच. अ-
 थवा मन, वचन अने कायाने शुद्ध राखवां,
 संयमने विषे निरतिचारपणुं तथा जीव अदत्त,
 स्वामी अदत्त, गुरु अदत्त अने तीर्थकर अदत्त,
 ए चार प्रकारनी चोरीनो त्याग करवो ते आठ-
 मो (सोअं के०) शौचं, एतद्वे शौचधर्म. समस्त

आखों की, पलकों पर चमकता हुआ मिर के तालों में जाकर ठहरे, वहाँ से उठकर ज्योतिषा ताक में घुमता हुआ तथा चन्द्रमा की बराबरी से निकल कर सब दिशाओं में घूमता, आकाश में उड़लता तथा कलकों को दूर करता, हुआ मात्त स्थान जो सिद्ध शिला उसमें प्राप्त होता हुआ विचार कर। इतना विचार ध्यान करने वाल को कुम्भक पवन साधन करके करना चाहिये जब इसका अभ्यास पूरे तोर से हो जावे तब इस मंत्र पदको सदा अपने ताक के अग्रभाग में त्र भाँहों के बीच में धारण करा ध्यान करै—

पद—**ओं**—जिसको प्रणव कहते हैं। यह पाच परमेष्ठो को प्रकाश करनेवाला है क्योंकि यह पद पाच परमेशियों के प्रथम पाच अक्षरों ही से बना है जैसे (अ+अ+आ+उ+म्)

= (अरहन + अता (सिद्ध) + आचार्य + उपाध्याय—मुनि)

यह अक्षर परमेष्ठो का सूचक है ऐसा स्वामी के इस श्लोक से भल प्रकार विदित है।

श्लोक—यस्माच्छब्दात्मकं ज्योति प्रसूतिमति निर्मल।
वाच्यवाचनसवयस्ते न च परमेष्ठिन ॥

इस 'ओं' अक्षर को हृदय कमल की कणिका में स्वर और व्यंजनो से बँटा हुआ, चन्द्रमा के रंग समान सफेद रंग का देख कर कुम्भक पवन के द्वारा विचार कर—

इसी 'ओं' अक्षर को यदि मूगे के समान तात रंग का विचारे तो जगत में धबडाहट पैदा हो जाय व वशीकरण का कार्य हो। यदि सुवर्ण रंग का विचार करे तो स्तन

गाथा ३० मीना बूटा शब्दना अर्थ.

पढमं-प्रथम.

अणिच्च-अनित्य.

असरणं-अशरण.

संसारो-संसार.

एगया-एकता, एकत्व.

य-अने.

अणत्तं-अन्यत्व.

असुइत्त-अशुचित्व.

आसव-आश्रव.

संवरो-संवर.

य-अने

तह-तेमज.

णिज्जरा-निर्जरा.

नवमी-नवमी.

विस्तारार्थः-लक्ष्मी, यौवन, कुटुंब, परिवार तथा आउखा प्रमुखने विषे जे अनित्यतानी ज्ञावना करवी, एटले संसारना सर्व पदार्थ ते कुशाग्रस्थ जलविंदुनी परे अनित्य अस्थिर जाणे, ते (पढमं के०) प्रथमं, एटले प्रथम (अणिच्चं के०) अनित्यं, एटले अनित्य ज्ञावना. मरण आव्याना समये चक्रवर्ती, इंद्र अथवा तीर्थंकर प्रमुख गमे तेवो मोटो पुरुष होय, तेने पण धन कुटुंबादिक कोइनुं शरण मलतुं नथी, संसारमांहे

का काम दे. यदि काले गंग का विचारे तो द्वेप पैदा हो जाय किन्तु मोक्ष मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिये सदा यह अक्षर सफेद रंग ही का देखना योग्य है ।

पंच परमेष्ठी नमस्कार लक्षण मंत्र का विचार—अपने हृदय में एक सफेद चमकता हुआ आठ पत्र का कमल विचार करै उसकी बीच की कर्णिका में सात अक्षर का मंत्र अर्थात् 'शमो अरहंताणं' विचारे, और इस कमल की चार दिशा सम्बन्धी पत्रों पर क्रम से यह ४ मंत्रों को विचारे:—

१—शमोसिद्धाणं—५ अक्षर ।

२—शमो आयरियाणं—७ अ०

३—शमोउवज्झायाणं—७ अ०

४—शमोलोये सब्ब साहूणं—६ अ०

और इस कमल के चार विदिशा याने कोनों के पत्रों पर यह ४ मंत्र विचारे—

सम्यग्दर्शनाय नमः १ सम्यग्ज्ञानाय नमः २ सम्यग्चारित्राय नमः ३ सम्यगतपसे नमः ४

इस तरह ६ पदों को कमल पर स्थाप कर ध्यान करने से चित्त में बहुत पवित्रता प्राप्त होती है ।

इसी तरह पंच परमेष्ठी के नमस्कार रूप नीचे लिखे यह भी मन्त्र हैं । १६ अक्षर का मन्त्र—अर्हत्सिद्धाचायोपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नमः;—

६ अक्षर मंत्र—अरहंत अरहंत सिद्ध ।

४ अक्षर मंत्र—अरहंत—

स्वजनादिक पण अन्य ठे, एवी जे ज्ञावना करवी, ते पांचमी (अणत्तं के०). अन्यत्वं, एटले अन्यत्व ज्ञावना. रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, वीर्य, परु तथा आंतरां इत्यादिक अमेध्य वस्तुंश्री शरीर जरेलुं ठे, अने जेनां नवे द्वारो सदा घरनी खालनी पेठे वहेतां रहे ठे, ए शरीर कोइ काले पण पवित्र होतुं नथी, एवी जे ज्ञावना करवी, ते ठठी (असुइत्तं के०) अशुचित्वं, एटले अशुचित्व ज्ञावना. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, तथा योग, ए पांच प्रकारना आश्रवे करीने कर्म बंधाय ठे; अथवा दया दानादिके करी शुच कर्म बंधाय ठे, अने विषय कषायादिके करी अशुच कर्म बंधाय ठे, एवी जे ज्ञावना करवी ते सातमी (आसव के०) आश्रवः, एटले आश्रव ज्ञावना. जे जे संवरथकी जे जे आश्रव रोक्याय, ते ते आश्रवनुं रोकवुं,

२ अक्षर मंत्र—सिद्ध-

१ अक्षर मंत्र -अ-

पहला पंच परमेष्ठी तमस्कार रूप मंत्र १०८ बार जपना बराबर है १६ अक्षर का मंत्र २०० बार जपने के, यह बराबर है ६ अक्षर का मंत्र ३०० बार जपने के, यह बराबर है ४ अक्षर का मंत्र ४०० बार जपने के, यह बराबर है १ अक्षर का मंत्र ५०० बार जपने के ।

इत्यादिक अनेक मंत्र पद हैं। इनके ध्यान करने से मन पश्चात्त होकर निजस्वरूप की ओर दाडता है। इनका विशेष बणन शास्त्र के देखन से मालूम हो सकता है। यहाँ पर लिखने से यह लेख बहुत बढ़ जायगा। प्रयोजन यह ध्या में रराना योग्य है कि बिना ससार सम्बन्धी राग द्वेष छोडे यह मंत्र पद भी, ध्यान किये हुये लाभ और वैराग को नहीं बढ़ाते हैं। अपन सूक्ष्म आत्मा की ओर अपने मन का लगा देनाही हमारा असली मतलब है। इसी लिये ही यह पदस्थ ध्यान का अभ्यास है। जेसा कि श्रीमान जयचन्द्र जी ने इस अडिह में कहा है—

अक्षर पद कू अथ रूपले ध्यान में ।

जे ध्यान इस मंत्र रूप इक तान म ॥

ध्यान पदस्थ जु नाम कहो मुनिराज ने ।

जे यामें ब्हे लीन लहे निज वाज म ॥

गाथा ३१ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

लोगसहावो-लोकस्वभाव.

वोही-वोधि.

दुल्लहा-दुर्लभ.

धम्मस्स-धर्मना.

साहगा-साधक.

अरिहा-अरिहंतादिक.

एआओ-ए.

भावणाओ-भावनाओ.

भावेअव्वा-भाववी.

पयत्तेणं-प्रयत्ने करीने.

विस्तारार्थः-केरु उपर बे ह्याथ दइने तथा बन्ने पग पसारी उन्नेला पुरुषना जेवो जेनो सम आकार परु द्रव्यात्मक ठे, पूर्व पर्याय विणसे, नवा पर्याय उत्पन्न आय, अने द्रव्यपणे निश्चल होय, एम उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य स्वरूप चौद राजलोक ठे. तेलुं नीचेनुं तलीयुं उंधा वालेला मल्लक (कोमीया) सरखुं ठे, तथा मध्य जाग जालर सरखो ठे, अने लपरनो जाग मृदंग सरखो एवो शाश्वत ठे, इत्यादिक जे लोकस्वरूपनी जावना करवी, ते दशमी (लोगसहावो केण) लोकस्वजावः, एटले लोकस्वजाव जावना जाणवी.

अध्याय २९वां

रूपस्थ ध्यान ।

सोरठा

सर्व विभुव जुत जानिये, ये ध्यावैं अरहंत कूं ।
मन बस करि मतिमान, ते पावै तिस भाव कूं ।

अर्थात्—अपने मन में अरहंत का स्वरूप विचारना सो रूपस्थ ध्यान है—अर्थात् अरहंत भगवान के स्वरूप में अपने मन को लगाकर यह विचारना कि इन अरहंत भगवान ने ज्ञानाधरणी, दर्शनावरणी, अंतराय, मोहनी ऐसे चार घातिया कर्मों का नाशकर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य्य प्रकट किया । केवल ज्ञान के होते ही समवशरण की रचना हुई । श्री जिनेन्द्र भगवान सिंहासन पर अंतरीक्ष में विराजमान हैं । देवादिक नाना प्रकार की भक्ति कर रहे हैं । भगवान के रागद्वेष, भूख प्यास, रोग आदि कोई भी दोष अठारह दोषों में नहीं है । भगवान शांत स्वरूप देखते ही भव्य जीवों का चित्त कमल की भांति प्रफुल्लित हो जाता है, जिनकी निरक्षरी वाली सब सभा उपस्थित जनों के समझ में आती है, जिसको सुन कर ही जीव धर्म की ओर गमन करते हैं । इत्यादिक उनकी मूर्ति का ध्यान करते करते यह ध्यानी उनही से तन्मय हो जाता है अर्थात् एक मेंक हो जाता है । तब मन की वृत्ति ऐसी हो जाती है कि जिस समय मन और वस्तुओं से हटाकर लीन किया उसी समय मन में श्री अरहंत की घीतराग मूर्ति ही झलकने लगती है । इसी तरह अभ्यास हो

के०) दुर्लभाः, एटले दुर्लभ ठे, एवं जे चिंतववुं, ते बारमी धर्मनी जावना. ए रीते सम्यक्दृष्टिए (पयत्तेणं के०) प्रयत्नेन, एटले उद्यमे करीने (एआर्ज के०) एताः, एटले ए कहेली (जावणा उ के०) जावनाः, एटले बार जावनाउ तेने प्रमाद रहित थइने शुद्ध मने करी (जावेअवा के०) जावितव्या, एटले जाववी तथा पांच महाव्रत मांहेली एकेका महाव्रतनी पांच पांच जावना मलीने पचीश जावना ठे, ते पण एमां अंतर्जावे ठे, तथा मैत्री, प्रमोद, कारुण्य अने उपेक्षा, ए चारनी साथे पूर्वोक्त बार जावना मेलवीए, ते वारे सोल जावना थाय ठे. तेनो विचार उपाध्याय श्री विनयविजयजीकृत शांतसुधारस ग्रंथथकी विस्तारे जाणवो ॥ ३१ ॥

हवे पांच प्रकारनां चारित्रनुं वर्णन करे ठे—

जाने से ऐसी दशा ध्यानी की हो जाती है कि स्वप्ने में भी अरहत की मूर्ति दीखने लगती है। फिर यह विचार होता है कि सर्वज्ञ भगवान की आत्मा में और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है। जो वह है सो मैं हूँ, क्योंकि इस आत्मा में यह शक्ति है कि जिस विषय की ओर इसको जोड़कर ध्यान किया जाय उसी विषय की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यदि राग तथा क्रोध रूप के ध्यान का अभ्यास करे तो जगत भर में स्रोम पैदा कर दे, और जो वीतराग होकर शुद्ध स्वरूप का ध्यान करे तो शुद्धस्वरूप हो जाय। जैसे फटिष्मणि निर्मल होती है, उसके नीचे जिस रंग की चीज रख दे उसी ही का रूप दिखलाई दे सकता है।

अध्याय ३०वाँ

रूपातीत ध्यान।

दोहा

सिद्धनिरजन कम बिन, मरति रहित अनत ।

जे ध्यायै परमात्मा, ते पावै शिष सत ॥

भावार्थ—सब कर्मों से दूर पुद्गल की मूरत को नहीं रखने वाला अनत गुणों के भंडार ऐसे सिद्ध परमात्मा का जो ध्यान है वह रूपातीत ध्यान है। इस ध्यान का विचारनेवाला यह विचारता है कि “सोह” अर्थात् स अह अर्थात् जो वह है सो मैं हूँ। अर्थात् मेरी शक्ति श्रीर सिद्ध भगवान की शक्ति एकही है। जैसे वह सब ससार के प्रपच रूप विकल्प जालों से रहित

लान्न, ते जेना वडे थाय, ते सामायिक, तथा
 वली सम ते ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र, तेनो
 आय जे लान्न, ते ज्यां थाय ठे. एटले जेणे करी
 ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र, ए त्रणेनी प्राप्ति थाय
 ठे, तेने सर्व सावद्ययोगत्यागरूप, अने निरवद्य-
 योगसेवनरूप सामायिक कहीए. ते श्रावकने
 देशविरतिरूप सामायिक अने साधुने सर्व सा-
 वद्यविरतिरूप सामायिक होय. तेनां वे जेद ठे,
 तेमां भरत ऐरवतादिक दश क्षेत्रने विषे पहेला
 तथा वेद्वा जिनना वारामां सर्वविरति सामा-
 यिक दंरुकनो उच्चार करावे, ते इत्वरिक उठा-
 मण कख्या सुधी जे रहे, ते इत्वरिक एटले स्व-
 द्पकाल जावी सामायिक कहीए अने वचला
 वात्रीश जिनोना वारामां तथा महाविदेह क्षेत्र-
 मां यावत्कथिक एटले सामायिक उच्चर्या पठी
 निरतिचारज पाळे ठे, तेथी तेने उठामण नहीं

राग और द्वेष से अत्यन्त दूर आनन्द रूप है, जैसे मैं हूँ। जैसे बट तीन लोक अलोक का ज्ञान धारणवाले हैं वैसे मैं हूँ। उनमें मुझमें ज्ञानि अपेक्षा कोई भेद नहीं है। किन्तु भेद केवल यही है कि उनके गुण ज्ञानपर विभक्त व पालिस विभक्त हुये नगीने की भाँति झलक रहे हैं, और हमारी आत्मा के गुण खान से निकलते हुए पत्थर की भाँति दृश्य रूप हैं। यदि हम तप द्वारा इसका पालिस करेंगे तो यह भी सिद्ध भगवान के सदृश हो जायगी।

यह सिद्ध भगवान जानानन्द स्वभाव हैं सो मैं हूँ। मैं अपने को सिद्ध भगवान ही मानता हूँ। वह मेरे ज्ञानि के सम्यन्धी हैं। उनसे मित्रता करूँगा अर्थात् उनही के गुणा में यदि मैं लीन हो जाऊँगा तो उनके गुण भले मित्र की तरह अपने में मुझे मिला लेंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार सर्व संसार से मन हटाकर जो निज आत्मा को सिद्ध मान कर ध्यान करते हैं वे अभ्यास के बल से कर्मों को नाश कर उस रूप ही हो जाते हैं।

यह ४ प्रकार का धम ध्यान परमानन्द का करनेवाला तथा शुद्ध ध्यान का पैदा करनेवाला है।

आगम में साधारण रूप से धर्म ध्यान के ४ भेद यह भी कहे हैं—आज्ञा विचय - अरहंत की आज्ञा को शास्त्रद्वारा जान कर विचारना, इससे परिणाम शुभ होते हैं; अपाय विचय—कर्मों के दूर करने के उपाय विचारते रहना; विपाक विचय—कर्मों के फल का विचारना कि संसार में जीव अपने पुण्य तथा पाप के वश में होकर तरह तरह के दुख सुख पाते,

एक सातिचार ते मूलगुणघातीने प्रायश्चित्तरूप
अने वीजो निरतिचार ते इत्वर सामायिकवंत
नव दीक्षित शिष्यने ठज्जीवणीया अध्ययन न
एया पठी होय, तथा वीजा तीर्थ आश्रयी ते
जेम श्री पार्श्वनाथना तीर्थशी वर्द्धमान स्वामी-
ना तीर्थे आवी चार महाव्रतरूप धर्म त्यांगीने
पंच महाव्रतरूपे धर्म आदरे, तेने होय.

त्रीजा (परिहारविसुद्धीअं के०) परिहारवि-
शुद्धिकं, एटले परिहारविशुद्धि चारित्र कहेवाय
वे. तेमां (परिहार के०) तपोविशेष, तेणे करी
विशुद्धि एटले कर्मनी निर्जरा जे चारीत्रने विषे
होय, तेने परिहारविशुद्धिक चारित्र कहीए. ते
वे जेदे वे. तेमां पहेलुं जे चार जण विवक्षित
चारित्रना आसेवक ए कटपमां प्रवर्त्तता होय,
तेनुं चारित्र ते निर्विषमानसिक परिहार वैशु-
द्धिक चारित्र जाणवुं, अने वीजुं जे चार जण

हं, सम्भान विचय—तीन लाख या स्वर्ग तथा सब परमादि का वर्णन विचारना ।

• यह धर्म ध्यान गीतगग परिणामों का कारण है ।

ऊपर कहा हुआ पिंडम्व पदस्थादि ध्यान का अभ्यास धीत-
राग रूप होकर किये जाने से हमारे म शुद्धता हाती जायगी ।
ज्यों ज्यों शुद्धता होगी त्यों त्यों कर्मों का निजग होगी ।

यहां शुद्धता जब अधिक हो जाता है तब शुद्ध ध्यान
पेदा हो जाता है । यह शुद्ध ध्यान उठते उठते केंद्रीय ज्ञान
का पेदा कर देता है । इस ध्यान के फल से यह जाय कर्मों के
बोझे से हलका हाता हुआ स्वर्ग और अधिक आदि गतियों में पहुँच
जाना है । फिर धीरे धीरे तो मात्त के फल का प्राप्त करता है,
जसा कहा है—सर्ग० २३ —

ज्ञान समुद्र तहा सुख नार पदारथ परकृति रत्न विचारो ।
राग विराय विमोह कुजनु मलोन करे तिनि दूर धिडारो ॥
शक्ति सभारि करो अग्रगाहन निमल होय सुतत्य उधारो ।
ठानि क्रिया निज नम स्व गुर भाजन भोगत मोक्ष पयारो ॥२५

इस लिये सत्तारो जाचों को अपन लगे हुए कर्मों को दूर
करने के लिय १२ प्रकार तप के द्वारा कम का निर्जरा करनी
चाहिये । जो इस उत्तम उपाय को पहचान कर फिर भी
ढील करते ह उनके लिय फिर सुधार का मोक्षा जाना एक
कठिन पदारथ है, क्योंकि वह ताव मात्सिक शक्ति जा कि
मनुष्य गति में प्राप्त हाती है, और किसी भी मनुष्य गति से
हीन तिर्यचादि गतियों में नहीं प्राप्त हाता है । देव गति में
इन्द्रिया का लुभानवात कारणों के विराप हाने से यह जीव
उहाँ में मुग्ध हा जाता है । और चूकि मनुष्य जन्म उत्तम

कटप स्थितपणे नित्य करे. एम ठ महीना तप करे, ते पठी फरी चार तपस्याना करनार, ते वैयावचीया थाय, अने वैयावच्च करनारा तपीया थाय, ते पण ठ मास लगे तप करे, ते पूर्ण थया पठी जे गुरु थया होय, ते ठ महीना तप करे, ते वारे ते आठ मांहेलो एक गुरु थाय, शेष बीजा वैयावच्च करे. एम अठार महीना सुधी तप संपूर्ण करी, पठी जिनकटप आदरे, अथवा गढमां पण आवे. तप जे प्रथम संघयणी, पूर्वधर लब्धिवंत होय, ते प्रचुर कर्मना परिपाकने अर्थे अंगीकार करे. ए चारित्र पांच जरत, पांच ऐरवतमां पहेला अने ठेव्वा तीर्थकरना तीर्थमां होय. ए परिहारविशुद्धि चारित्रनां १० द्वार ठे. ते नीचे प्रमाणे—क्षेत्र १, काळ २, चारित्र ३, तीर्थ ४, पर्याय ५, आगम ६, वेद ७, कटप ८, लिंग ९, क्षेत्र १०, ध्यान ११, गण

समागम अनन्त जन्मों के भीतर घूमते रहते हुए किसी कारण विशेष से प्राप्त हो जाय तो हो जाता है। ऐसे जन्म पाने पर फिर भी जो उन कर्मों के नाश का उपाय नहीं करते हैं कि जिन कर्मों के कारण यह जीव सदा काल दुःख पाता रहा तथा यहां भी दुःख पा रहा है, तो हम तो उस व्यक्ति को विचारशून्य के सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते हैं।

इस लिये जो इस नर देही को सफल करना चाहें उन्हें आज कल का मुंह नहीं ताकना चाहिये, किन्तु सब्बे हृदय से अपनी इस आज कल करने में नाश हो जानेवाली पर्याय से अपनी आत्मा का भला कर लेना चाहिये ! कल को यह न रही तो पछुताना होगा कि हाय, हम चाहते थे कि इस नर देही में अपने पूर्व बँधे हुए कर्मों की निर्जरा करें। हाय ! अब क्या करें, अब तो यमराज के मुख में चले जा रहे हैं।

अध्याय ३१वां

मोक्षतत्व ।

सातवां तत्व मोक्ष है। जब इस जीव से चार घातिया कर्मों के पुद्गल भिन्न हो जाते हैं तब यह जीव जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् अरहंत होकर आत्मीक सुख भोगता है। इस दशा में केवल ४ अघातिया कर्म जली हुई रस्सी की भांति बाकी रहते हैं, जिनका फल उस अरहंत आत्मा के आनन्द में किसी प्रकार बाधक नहीं होता।

यह आयु, नाम, गोत्र, वेदनी रूप चार कर्म भी जब विलकुल छूट जाते हैं तब यह आत्मा शरीर से निकलते ही

उपशमश्रेणीवालो जे होय, ते उपशमावे, तथा
 कृपकश्रेणीवालो होय, ते खपावे. ते संख्याता
 खंरु मांहेलो जे वारे ठेव्ठो खंरु रहे, तेना अ-
 संख्याता सूक्ष्म खंरु करीने दशमे गुणठाणे उ-
 दयमां आणी जोगवीने उपशमावे, अथवा कृ-
 पक होय, ते खपावे, ते दशमा गुणठाणानुं नाम
 सूक्ष्मसंपराय, अने चारित्रनुं नाम पण सूक्ष्म-
 संपराय जाणवुं. ए चारित्र वेजेदे ठे, एक श्रेणी
 चढताने विशुद्ध मानसिक होय, बीजुं उपशम-
 श्रेणीशी परताने संक्लिष्ट मानसिक जाणवुं.
 औपशमिकने ए चारित्र आखां संसारमां पांच
 वार अने एक जवमां वे वार आवे ॥ ३१ ॥

तत्तो अ अहस्कायं, स्वायं सव्वंमि जी-
 वल्लोगंमि ॥ जं चरिक्कण सुविहिआ,
 वच्चंति अयरामरं ठाणं ॥ ३३ ॥

एक समय में सीधा सिद्ध लोक को पहुँच जाता है। जैसे परत का बीज फली के फूटते ही ऊपर को जाता है, व अग्नि की लव सीधी ऊपर को उठ जाती है। और यह सिद्धात्मा लोक के ऊपर उसी स्थान तक जाता है जहाँ तक धम द्रव्य है। उस सिद्ध लोक में अपने अरहत के शरीर से कुछ कम चैतन्य रूप शरीर को धारता हुआ अपने ज्ञान में अनन्त काल तक मगन रहता है। फिर उस सिद्धात्मा को ससार में आकर जन्म मरण करने की आवश्यकता नहीं रहती। यह मोक्ष तत्व है।

इस प्रकार इस मात तत्वों का स्वरूप जान कर जो अपना विश्वास निर्मल करते हैं वे सम्यक् दर्शन को पाते हैं और उसी समय उनका धारा सम्यक् ज्ञान रूप और आचरण सम्यक् चारित्र्य रूप हो जाता है।

जिनके जीवात्मा व उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले पुद्गल आदि का श्रद्धान भले प्रकार हो गया है, वह प्राणी नियम न हाने पर भी जुआ खेलना आदि मात व्यसन जो कि प्रत्यक्ष ही में दुःख के कारण हैं कदापि नहीं करेगा। सत्य वचन बोलने का नियम न होने पर भी मुँह से कभी पर को दुःखदाई ऐसे गूढ़ वचन न निकालेगा, क्योंकि उसके पहले ही आश्रय तत्व और उसके कार्यों का श्रद्धान हो गया है। यह जानता है पर को अज्ञाना पहुँचाने से अज्ञाना घेदी कर्म बाधना पड़ेगा जिसका फल मुझ ही को कड़ुवा मिलेगा। इसी लिये सम्यक् दृष्टि होना धर्मिष्ठ होने की जड़ पक्की करना है। बिना सम्यक् दृष्टि हिंसा न करन, भूट न बोलने आदि के नियम समय पाकर दृढ़ जा सकें हैं।

वलीने तेरमे अने चौदमे गुणठाणे होय, ते कै-
 वलिक जाणवुं. ए चारित्र (सव्वंमि के०) सर्व-
 स्मिन्, एटले समस्त एवा (जीवलोगंमि के०)
 जीवलोक, एटले जीवलोकने विषे केवुं ठे? तो
 के (खायं के०) ख्यातं, एटले प्रसिद्ध ठे. हवे ते
 केवी रीते प्रसिद्ध ठे? ते कहे ठे. (जं के०) यद्,
 एटले जे चारित्रने (चरिऊण के०) चरित्वा, ए-
 टले आचरीने (सुविहिआ के०) सुविहिताः,
 एटले सुविहित साधु, ते (अयरामरं ठाणं के०)
 अजरामरं स्थानं एटले अजरामर स्थानकने
 (वञ्जंति के०) व्रजंति, एटले पामे ठे, एटले जन्म,
 जरा अने मरण तेणे रहित एवुं जे मोक्षरूप
 स्थानक, तेने पामे ठे ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीसंवरतत्त्वविचारः समाप्तः ॥ ६ ॥

इन सात तत्वों का ज्ञान बढ़ाने के लिये हमें नित्य शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिये, ताकि हमें इनका ज्ञान और भा बढ़ जाय । और उसीके साथ अपने योग्य आचरण को भी धारणा हमारा कर्तव्य है ।

आचरण के नियम मुनि और श्रावक के लिये भिन्न भिन्न हैं—अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य्य और परिग्रह त्याग, इन पांच व्रतों को पूरे तौर से पालना महाव्रत के धारक मुनियों का काम है । और इन्हीं ५ व्रतों को थोड़ा पालना श्रावक का कर्तव्य है । जैसे श्रावक स्थूल (नस) हिंसा न करके सूक्ष्म-हिंसा अर्थात् एकेन्द्री जीवों का वाधा नहीं बचा सकता है । सत्य बालने में उस असत्य में दोष नहीं समझता जिससे किसी दूसरे के प्राण बचें, चोरी न करने में, सर्व स्थानों में रहनेवाले जल व मिट्टी को चोरी नहीं बचाता है । मुनि विना दिया जल भी नहीं लेते । ब्रह्मचर्य्य में श्रावको को स्वस्त्री संतोष नाम व्रत होता है । मुनि स्त्री मात्र के त्यागी है । परिग्रह में श्रावक अपने वर्तन याज्य सामान की गिनती कर लेता है जब कि मुनि के गिनती न होकर सर्व परिग्रह का त्याग होता है ।

इसीके अंतर्गत और भी कई भेद दोनों सम्प्रदाय के आचरण विषय में है । इनका विशेष वर्णन इस जिनेन्द्रनत दर्पण की तीसरी जिल्द में समय पाकर किया जावेगा ॥

॥ समाप्तम् ॥

पण निर्जरा ठे, ते कहे ठे—पुण्यकर्मनुं जे सा-
 रुवुं, ते द्रव्यनिर्जरां अने आत्मानां शुद्ध परि-
 णामे करी कर्मनी स्थिति जे पोतानी मेले पाके
 अथवा वार प्रकारनां तपे करी नीरस कखां
 एवां जे कर्मपरमाणु, ते जेनाथी सडे, एवा जे
 आत्मानां परिणाम थाय, ते ज्ञाननिर्जरा जा-
 णवी. तथा तिर्यचादिकनी पेठे इह्या विना कष्ट
 सहन करतां कर्मपुण्यनुं जे क्षपण थाय ठे, तेने
 द्रव्यनिर्जरा अथवा अकामनिर्जरा कहीए; अने
 वार प्रकारनां तपे करी संयमी थकां कष्ट सहन
 कखाथी जे कर्मपरमाणुनुं क्षपण करवुं, अथवा
 सारुवुं, तेने ज्ञाननिर्जरा अथवा सकाम निर्जरा
 कहीए. ए ब्रह्मे निर्जरामां ज्ञाननिर्जरा अथवा
 सकामनिर्जरा श्रेष्ठ ठे. ते (णिज्जारा के०) निर्ज-
 रा, एटले निर्जरातत्त्व (वारसविहं के०) द्वादश-
 विधं, एटले वार प्रकारनां (तवो के०) तपः, एटले

भारत-जैन-महामण्डल के उद्देश्य ।

(१) जैन समाज की भिन्न भिन्न आम्नायों तथा जातियों में सामाजिक तथा लौकिक ऐक्यता और मैत्री भाव का प्रचार करना ।

(२) जैन समाज की प्रचलित कुरीतियों का सुधार कर उत्तमात्म रीतियों का प्रचार करना ।

(३) जीव दया का प्रचार करना ।

(४) स्त्रीशिक्षा का प्रचार कर जैन स्त्री समाज की मानसिक, शारीरिक तथा लौकिक उन्नति करना ।

(५) जैन जाति में लौकिक (आध्यात्मिक आदि) तथा धार्मिक विद्या का प्रचार करना, और सभा के सभासदों में जैन शास्त्रों के अध्ययन का प्रचार करना ।

(६) जैन शास्त्रों का उदघाटन करना, तथा उन्हें प्रकाश करके मूढ़त्व का दूर करना, और तीर्थंकरों के कट हुए सत्य मार्ग का प्रकाश तथा प्रचार करना ।

(७) जैन जाति में व्यापार का उन्नति करना ॥

धन-यदास,

जगरल सेक्रेटरी, भारत जैन महामण्डल,

ललितपुर ।

करीने बंधतत्त्व सम्यक्दृष्टि जीवे (नायबो के०)
ज्ञातव्यः, एतत्वे जाणवुं ॥ ३४ ॥

अहीं कर्मना चार प्रकारना बंधमां संक्षेपथी मोदकनुं शास्त्रप्रसिद्ध द्रष्टांत आ प्रमाणे ठे-
जेम शुब्धादि द्रव्यना संयोगथी कोइ ब्रामुनो
स्मत्ताव वातादिकने दूर करवानो होय ठे, तेम
आठ कर्मना स्वत्ताव जुदा जुदा होय ठे, एतत्वे
जे कर्मनो जे स्वत्ताव, ते स्वत्तावसहितज ते
कर्म बंधाय, ते प्रकृतिबंध कहेवाय ठे. तथा जे
म कोइ मोदक अमुक मुदत सुधी सारो रहे,
त्यार पढी विकार पामे, तेम कोइक कर्म आ
त्तानी साथे अमुक काल सुधी संबन्धथी बंधाइ
रहे, पढी आत्माथी अलग थइ ते ते स्वत्ताव
रहित थइ जाय, ते प्रमाणे कर्मने कर्मपणे रहे-
वानो काल पण बंधमां समयेज नियमित थाय
ठे. एते कर्मना कालनो नियम ते स्थितिवंध

अणसण-मूणोअरिया, वित्तीसंखे-
 वणं रसच्चाओ ॥ कायकिल्लसो संली,-
 णया य वज्जो तवो होई ॥ ३५ ॥

गाथा ३५ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

अणसणं—अनशन.

ऊणोअरिया—ऊणोदरिका.

वित्तिसंखेवणं—वृत्तिसंक्षेप.

रसच्चाओ—रसत्याग.

कायकिल्लसो—कायक्लेश.

सलीणया—संलीनता.

य—अने.

वज्जो—बाह्य.

तवो—तप.

होई—छे.

विस्तारार्थः—पहेलुं (अणसणं केण) अनशनं,
 एट्ठे अनशन तप, ते आहारनो त्याग करवो,
 तेना वे ज्ञेद ठे—एक इत्वर, अने बीजो यावत्क-
 थिक. तेमां ठेह्वा तीर्थकरने वारे ठठ अठमा-
 दिक्थी मांढीने ठमासी पर्यंत, अनेक विधिए
 जे नियमयुक्त अशननो त्याग करवो, ते इत्वर
 अनशन कहीए, अने यावत्कथिक जे जावजीव

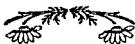
जय लौं महि भारत को ललना यु ति शास्त्र पुराणहिं पाठ करगी ।
तबलौं नहि भारत भारत को यह दानत दाय कर्वा सुधरेगी ॥



22-9

बालिका-विनय

रचयित्री—एक जैनमहिला ।



प्रकाशक,

कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन,
धारा ।

प्रथम बार १०००]

सन १८१३

[मूल्य १]

अत्रै त्थार पठी फरी महाव्रतनो जे आरोप क-
रवो, अथवा करेला दोषनो जे तपरूप दंरु आ-
व्यो ठे, ते ज्यां सुधी न करे त्यां सुधी महाव्रत
मां न स्थापवो, ते नवमुं अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त.
साध्वी अथवा राजानी राणी प्रमुख स्त्रीने विषे
संज्ञोग थइ गयार्थी चार वर्ष पर्यंत क्रिया सहित
अने लिंगादिक जेदे रहित तीर्थ प्रज्ञावना करी,
फरी दीक्षा लइने जे गहमां आववुं, ते दशमुं
पारांचित प्रायश्चित्त. ए दश प्रकारे प्रायश्चित्त
तप कह्युं.

बीजुं (विणुं के०) विनयः, एटले विनय तप,
एटले गुणवंतादिकनी जक्ति करवी, तथा अशा-
तना टालवी, इत्यादिक एना सात जेद ठे.

तेमां प्रथम ज्ञाननो विनय पांच जेदे ठे. त्यां
मत्यादि पांच प्रकारनां ज्ञाननी बाह्यथी सेवां क-
रवी, ते पहिलो जक्ति विनय. पांच ज्ञाननुं अंतरंग

Printed at the Nursing Press by
EJENI PRATAP BHARGAV.
802, Harrison Road, Calcutta.

१ सत्कार एटले स्तवन तथा वंदनादिक करवां.
 २ अच्युत्तान एटले आसनथी जठवुं. ३ सन्मान
 एटले वस्त्र तथा पात्रादिके करी पूजा करवी.
 ४ आसन परिग्रहण एटले अति आदरे करी
 आसन लावी आपीने स्वामी ! आ आसन उ-
 पर वेसो, एम मुखथी कहेवुं. तेमज ५ आसन-
 नुं प्रदान एटले मात्र मुखथकी कहेवुं एटलुंज
 नहीं, पण ते प्रमाणे आसन देवुं. ६ कृतिकर्म एटले
 वंदना करवी. ए साधु प्रमुखनी अपेक्षाए जा-
 णवु. ७ अंजलिग्रहण एटले हाथ जोरवा. ८
 आवतानी सामे जवुं, तेमज ९ वेठेलानी (पर्यु-
 पासना) सेवा करवी. १० जनाराने बोलाववा जवुं.

एतद्गणेशो इत्यारूप पहेलो विनय थाय ठे.
 ३३ प्रकारे शुश्रूषा
 बीजा अनाशातना विनयेन विनयेन पिस्तालीश जेद
 ते कहे ठे—१ ऋषजादिक चोवीश तीर्थकरे, २ क
 तथा २ जिनप्ररूपित धर्म, ३ धर्माचार्य अथवा

निवेदन ।

बाल चतुष्पादं मुता पटं चार धरि ध्यान ।
 तो पाव बह जगत मं विश्व कोति धन मान ॥
 शभ पुसक पदती रहा जाव उपजे मान ।
 मन्ना पराए म्भ हित किया करि अनुमान ॥

सुष्ठ पुत्रियो ।

यह तुम्हारी चीज तुम्हारे लिये है । इस पुस्तिका के प्रत्येक पदमें तुम्हारे हृदय के भाव हैं । इसी के अनुसार चलने से मसार में तुम गौरव और सुखसम्पन्न होओगी । एक २ पद को याद करो और अपने ध्यारे कटुस्त्रियोंको सुनाया करो । एक दिन तुम्हारी मनोकामना अवश्यही सिद्ध होगी और तुम भारतमाता की दुन्दारी पुत्रियों में गिनी जाओगी ।

तुम्हारे उच्च शिक्षा ग्रहण करनेके लिये "विद्यामन्दिर" अवश्य बनेगी—श्रीजन्मदायी माताका मंगल गान करो—सब बेड़ा पार है

धारा
 १५ ० १३

}

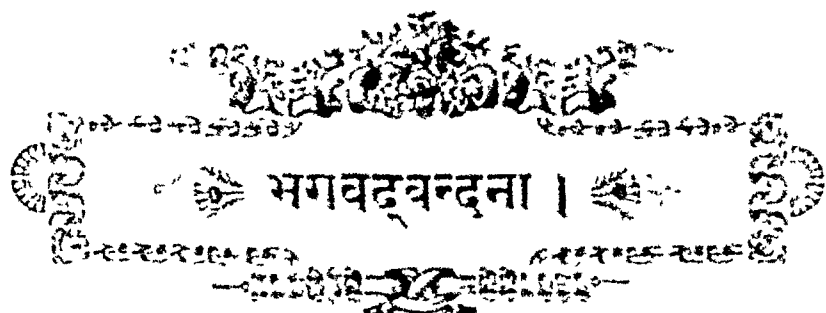
तुम्हारा शुभचिन्तक
 टवेन्द्र ।

त्रीजो चारित्रनो विनय पांच जेदे ठे, ते कहे
ठे—सामायिक प्रमुख पांच चारित्रोनी सद्वहणा
करवी, तेमज कायाए करी फरसवुं, आदरवुं, पा-
लवुं, तेमज जव्य प्राणीनी आगल प्ररूपणा करवी.

त्रण प्रकारना योगनो विनय कहे ठे—आचा-
र्यादिकोनो सर्व कालने विषे मन, वचन तथा
कायाए करी विनय करवो. एटले मने करी मा-
तुं चिंतववुं नहीं, वचने करी मातुं बोलवुं नहीं,
तथा कायाए करी माठी प्रवृत्ति करवी नहीं.
तेवी रीतेज ते आचार्यादिकने विषे मन, वचन
अने कायाने शुद्ध प्रवृत्तिमां उदीरवां, प्रवर्त्ताववां.
ए रीते त्रण प्रकारे योगनो विनय ते पूर्वोक्त
त्रण विनयेनी साथे जेद तां ठ जेद विनयना थया.

सातमो लोकोपचार विनय मात जेदे ठे, ते
कहे ठे—गुरु प्रमुख जे श्रेष्ठ पुरुष होय, तेजोनी
समीपे बसवुं, ५ आराधना योग्य पुरुषनी इहाए

अहा ! कैंसी विदुषी भी भारत की नारी । पिया की पियारी पिता की
दुलारी ॥ जो सन्तान अपनी सुधारे बढ़ाओ । ताँ सारे हीं तुम अपनी पुत्री
पढ़ाओ ॥ जो कन्या को अपनी पढ़ाओगे पिया । चन्दी जायगी तब गहा से
अपिना-



हे जगवन्धु जगतहितकर्ता श्री जिन हम पर दया करो ।

ज्ञान सुधा वर्षा कर स्वामी विद्या दे सब दुःख हरो ॥१॥

केवल ज्ञान ज्योतिसे तुमने जगत चराचर देख लिया ।

सबके स्वामी भन्तर यामी, हमको सट उपदेश दिया ॥२॥

हम सब नमन करें तव पदकी धन्य धन्य गुण आगर हो ।

भव-ज्वाला से जले जीवकी, शान्ति-सुधाके सागर हो ॥३॥

करने से गुण-गान तुम्हारा, पाप शाप सन्ताप भगे ।

होकर इष्ट मनोरथ सिद्धि, हृदय माँहि सत ज्ञान जगे ॥४॥

तव शासन पर चले सदा हम, करुणाकर उपकार करो ।

जैन-वालिका-गण के स्वामी, दे विद्या उदार करो ॥५॥

सात विषये करी विनय करीए. तेथी ए, वीजुं
विनय तप पण सात प्रकारनुं कळुं ठे.

त्रीजुं (वेयावच्चं के०) वेयावृत्त्यं, एटले वेयावृ-
त्य तप, ते आचार्यादिकने ज्ञान, पाणी प्रमुख
संपाद्वारूप उपपृंच (आधार) दइए, ते दश
जेदे ठे. यथा—“आयरियं उवज्जाणं शेरं तवस्सी
गिलाणं सेहाणं ॥ साहंस्मी कुलं गणं सं,—धं वं
यावच्चं हवइ दसहा ॥१॥ (आयरिय) आचार्यः
ते जेनी पासेथी धर्म प्राप्त थाय ठे ते. (उवज्जाय)
उपाध्याय, ते जे विद्यान्यास करावे ठे ते.
(शेर) स्थविर, ते ज्ञान, पर्याय तथा वय, ए त्रण
प्रकारे. (तवस्सी) तपस्वी ते अछम प्रमुख तप
करनार होय ते. (गिलाण) ग्लान, एटले रोगी
होय ते. (सेहाण) शिष्य, नवी दीक्षा लीधेलो
होय ते. साहंस्मी, ते समान धर्मवान् होय ते.
कुल, ते चंद्रादिक कुलवान् होय ते. गण, ते

हे जगवन्धु जगत हित कर्ता, यी जिन हम पर दया करो ।
ज्ञान सुधा वर्षा कर स्वामी, विद्या दे सब दु ख हरो ॥६॥

जिनवाणी माताकी स्तुति ।

जिनवाणी जगत जननि मात ज्ञान दीजिये ॥

पकड़ी है शरण तेरी मात रक्षा कीजिये ।

ससार में बनादि मे बेहोश होरही ।

परदा पडा है मोहका अब खींच लीजिये ॥

हे माव तव समीप मुझे लज्जा आती है ।

कारुण्य विमल भावसे अब क्षमा कीजिये ॥

टाँटे हजार वर्ष से स्वामी ने तजी थी ।

सुपुत्र भी सभी गये, किमर्घ्य दीजिये ।

हम सोनह लाख पुत्र पुत्रियाँ तय्यार हैं ।

कतघ्न भूने मात को धिक्कार दीजिये ।

जो हादगांग मे सजी थी स्वामी सामने ॥

वह जीर्ण भूमि पै पड़ी हा ! शोक कीजिये ॥

सब भग ह्रीजे मातके प्राणों से दुखी है ।

अब भी कुपुत्रों ! मित्तके ज़रा सेवा कीजिये ।

शुभ भाग्य का उदय हमारे चमक उठा है ।

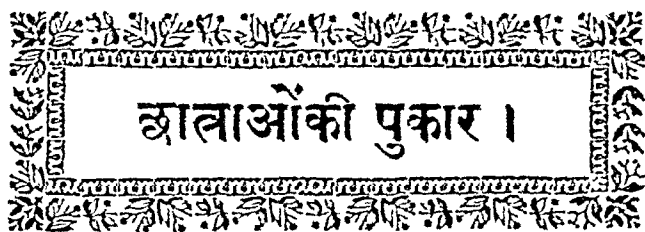
ते. (धम्मकहा के०) धर्मकथा, ते धर्मसंबंधी कथा कहेवी अथवा धर्मोपदेश करवा ते. ए प्रकारे (सज्जाओ होइ पंचहा के०) स्वाध्यायो जवति पंचधा, एटले स्वाध्याय तप पांच जेदे थाय ठे, ते कह्युं.

पांचमुं (जाणं के०) ध्यानं, एटले ध्यान, ते मननुं जे एकाग्रताए अवलंबन ते ध्यान तप, ते चार जेदे ठे.

तेमां पहेलुं आर्त्तध्यान, एना वली चार जेदे ठे—ब्राता, मित्र, स्वजन, माता, पिता, सुहृद्, नृत्य तथा पशु प्रमुख जे पोताने इष्ट एटले अति प्रिय होय तेमनुं, तथा शातावेदनीय, तेउंनो वियोग अथवा जे चिंता, शोक अथवा विलाप करवो, ते पहेलुं इष्टवियोग आर्त्तध्यान. मनने अणगमता जे विषय, अने तेना आधारभूत जे रासज कोटी प्रमुख अशुजनो संयोग अयात्री

श्रीमात के प्राणोंकी रक्षा आज कीजिये ।
धन्य धन्य घड़ी आजकी सेवा में लगे है ।

अब पुत्र पुत्रियों पै मात कृपा कीजिये ॥
अब हृष्टपुष्ट होके मात दया भाव से ।
संसार भ्रमण तोड़के उधार कीजिये ॥



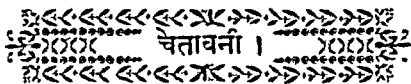
कव्वाली ।

सुनो तुम जैन धर्मज्ञो, यही विनती हमारी है ।
सुविद्या दान हम मांगे, रही मरजी तुम्हारी है ॥ टेक ॥
जो धार्मिक और लौकिक, काम दुनियां के रहे कुछभी ।
विना विद्या के सब फीके, जगत में धन य भारी है ॥ १ ॥
इसौ धन से धनी नामी, हुए जरमन श्री जापानी ।
यह लौकिक का नमूना है, धरम की बात न्यारी है ॥ २ ॥
जैन जाती में फैलाना, जो चाही सुःखदा विद्या ।
बनाओ शिक्षिता हमको, तभी कुछ सुख निशानी है ॥ ३ ॥
भवन विद्या के जितने है, करो उनकी सभी सेवा ।
दरब दिल खोल कर देदो. चपल कमला-कुमारी है ॥ ४ ॥

जे अध्यवसाय ते वीजुं मृषानुबंधी रौद्रध्यान, क्रोध तथा लोभादिकने वश थइने वीजानुं द्रव्य हरण करवानी जे चिंतवना करवी, ते त्रीजुं स्ते-यानुबंधी रौद्रध्यान. शब्दादिक विषयनुं साधन-भूत जे धन, तेना रक्षण करवाने अर्थे सर्व स्व-संबंधीउने विषे दुष्ट चिंतवन करवुं ते, जेमके जो आ सर्व जीवतां हशे, तो मारुं धन लइ लेशे, माटे जो ते मरी जाय, तो सोरुं थाय, ए-वी जे दुष्ट चिंतवना करवी, ते चोथुं संरक्षणा-नुबंधी रौद्रध्यान कहीए. ए आर्त्त अने रौद्र वेहु ध्यान संसार संबंधी फलनां देनारां ठे.

त्रीजा धर्मध्याननां चार जेद ठे—ज्ञान, दर्शन चारित्र तथा वैराग्यज्ञाबनोए करी वीतरागनां वचन उपर जे सदहणा, एटले श्रद्धा न राखवी. आपणी मति तुळ ठे, पण केवळिजाषित सर्व सत्यज ठे, एवी जे चिंतवना करवी, ते पहेळुं

बनाओ ऐसे कन्यालय जहाँ ही उच्च शिक्षाये ।
 करोहों का करो चन्दा नहीं कुछ तुममें भारी है ॥ ५ ॥
 हमें उम्मेद है पूरी, करोगे सब उधारा तुम ।
 गवीनायम को कुछ देना, तुम्हारा फ़र्ज़ भारी है ॥ ६ ॥
 सुनो तुम जैन धर्मज्ञो, यही विनती हमारी है ।
 सुविद्या दान हम मागे, रही मरजी तुम्हारी है ॥ ७ ॥



जामोरी जैम बहिनो ' कुछतो भना कमाओ ।
 मानुष जनम को पाके मत ध्यर्य ही गोवाओ ॥ १ ॥
 चौरामी पार करके पायी कहीं ये बारी ।
 भाग्यो मे मिल गया है सायंक हमे बनाओ ॥ २ ॥
 कुछ पाप के उदय मे नारी का पन्न पाया ।
 समको समाप्त दित कर सब भांति मे बनाओ ॥ ३ ॥
 प्राचीन जैत्रियों का भादस घटाया तुमने ।
 हम उच्च जाति को तुम नीचा न कर दियाओ ॥ ४ ॥
 किम नोट भी रहो हो, निज धन को खोरही हो ।
 धरार की धरा में मत जानधन मुटाओ ॥ ५ ॥

अथर्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान. ए ध्यान ज्ञा-
गिक श्रुतपाठीने त्रणे योग ठतां थाय ठे. ए
प्रथमं ज्ञेद.

१ उत्पादादिक एक पर्याये करी निर्वात स्था-
नरुना दीपकनी पेठे निष्प्रकंप चित्तवान् अइने
पूर्वलाथी विपरीत रहेवुं, ते वीजुं एकत्वपृथक्त्व
अविचार शुक्लध्यान. ए ध्यान गमे ते एक योग
अतां थाय ठे. ए वे ध्यान यद्यपि पूर्वगत श्रुता-
वलंबीने होय ठे, तथापि मरुदेव्यादिकने श्रुत
विना पण अयां हतां, ए विशेषतां ठे.

३ तेरमा गुणठाणाने अंते मनोयोग तथा
वचनयोग रुंध्या पठी काययोग रुंधतां होय, ते
त्रीजुं सूक्ष्मक्रिया अनिद्रिति नामे शुक्लध्यान.
आ ध्यान एकला मात्र काययोगेन थाय ठे.

४ शैलेरीगुणठाणे गये अके क्रियाविच्छेद अ-
इने जे पावुं परुवुं नहीं, ते चोथुं व्युत्थितक्रियां

माता पिता कुटुम्बी, सम्बन्धी लोग जितने ।

भरतार से भी बिनती, कर जोड़ कर सुनाओ ॥ ६ ॥

विद्या दो हमको माता, शिक्षा दो हमको भाई ।

बिन ज्ञान हमको मूर्खा, मत जानकर बनाओ ॥ ७ ॥

निज स्वार्थ में कमीका, कुछ डर न दिल में करना ।

कन्या भी होवे विदुषी, यह ख्याल दिल में लाओ ॥ ८ ॥

धर्मज्ञ विदुषी होकर, हम भी करेंगी सेवा ।

संसार-यात्री पद को, जल्दी सफल बनाओ ॥ ९ ॥

इस भाँति बिनती करके, चेतोरी जैन बहिनों ।

होवै सफल मनोरथ, जिन वाणी शरण आओ ॥ १० ॥

जागोरी जैन बहिनो कुछ तो भला कमाओ ।

मानुष जन्म को पाके वृथा ही मत गवाँओ ॥ ११ ॥



दोहा ।

विद्या विनु सोहे नहीं, छवि, यौवन, कुल, मूल ।

रहित सुगन्ध सजे न वन, जैसे सेमर-फूल ॥

३ कटपविशेषं उपधिनो जे त्याग करवो, ते त्री-
जो उपध्युत्सर्ग; ४ अधिक अशनादिक द्वेवानो
त्याग करवो तथा अशुद्ध ज्ञात पाणी एटले अ-
शनादिक चारने द्वेवानो जे त्याग करवो, ते
चोथो अशुद्धजन्तपाण उत्सर्ग, ए चार प्रकारे
द्रव्यश्री उत्सर्ग जाणवो. उत्सर्ग एटले त्याग क-
रवो, ए अर्थ समजवो.

हवे जावोत्सर्गना त्रण जेद कहे ठे. १ क्रो-
धादिक चारनो जे त्याग करवो, ते पहेलो कषा-
योत्सर्ग. २ नरकादिकना जवतुं आउखुं बांधवा-
नां कारण, जे मिथ्यात्वादिक ठे, तेनो जे त्याग,
ते बीजो जवोत्सर्ग, अर्थात् संसारोत्सर्ग. ३ बंध-
धना हेतु जे ज्ञानावरणीयादिक कर्म ज्ञानप्र-
त्यनीकपणादिक ठे, तेनो जे त्याग, तेने त्रीजो
कर्मोत्सर्ग कहिए. ए जावथी उत्सर्ग त्रण जेद
कह्यो, एथी कर्मनी निर्जरा थाय ठे. ए रीते ए
ठ प्रकारे (अजितरज तवो केठ) आच्यंतरं तपः

गङ्गाल ।

चठो बहनों पढो विद्या यही शिक्षा हमारी है ।
 विना विद्याके पढनेसे दशा बिगडो तुम्हारी है ॥
 तुम्हारा नाम शूद्रोंमें गिना जाने लगा बहनों ।
 बनी है पैरकी जूती वही जो मूर्ख नारी है ।
 तुम्हारा मान भी आदर रहा नहीं श्रेय कुछ देखो ।
 यही कारण है इसका कि अविद्या तुमको प्यारी है ॥
 तुम्हींको कहते थे लक्ष्मी तुम्हारा नाम है देवी ।
 तुम्हारे मूर्ख होने से हुआ भारत दुखारी है ॥
 अविद्या विपको तज करके न जब तक तुम पढो विद्या ।
 तभी तक यह दशा बिगडी हमारी भी तुम्हारी है ॥
 नहीं विद्यासे बढके है कोई घन रूप इस जगमें ।
 सिखावे धर्मका चिन्तन यही विद्या तुम्हारी है ॥
 सदा चित दे पढो विद्या पढाओ अन्य बहनों को ।
 करो परचार शिक्षाका यही विनती हमारी है ॥
 करो तुम प्रीति शिक्षा से, यही शिक्षा हमारी है ।
 चठो बहनों । पढो विद्या, इसी में लाभ भारी है ॥

विस्तारार्थः—अर्हीयां चार प्रकारनो वंध, ते मोदकने दृष्टांते जाणवो. जेम सुंठ प्रमुख पदार्थ नाखीने मोदक करयो होय, ते वायुरोगनुं हरण करे ठे; जीरुं प्रमुख टाढी वस्तु नाखीने मोदक करयो होय, ते पित्तरोगनुं हरण करे ठे; इत्यादिक जे द्रव्यना संयोगे करी मोदक नीपन्यो होय, ते मोदक द्रव्यगुणानुसारे वात, पित्त तथा कफादिक रोगोनुं हरण करे ठे, ते तेनो स्वज्ञाव जाणवो. तेम ज्ञानावरणीय कर्मनो ज्ञान अपहारक स्वज्ञाव ठे, सामान्य उपयोगरूप जे दर्शन, तेने नाश करवानो दर्शनावरणीय कर्मनो स्वज्ञाव ठे, अनंत अह्याबाध सुखने टालवानो वेदनीय कर्मनो स्वज्ञाव ठे, सम्यक्त्व तथा चारित्रने टालवानो मोहनीय कर्मनो स्वज्ञाव ठे, अक्षय स्थितिने टालवानो आयुःकर्मनो स्वज्ञाव ठे, शुद्ध अवगाहनाने टालवानो नाम कर्मनो स्वज्ञाव ठे,

मेरी विनती सुनो कर ध्यान

चहुँ आश्रम में गृहस्थ धर्म है सब से श्रेष्ठ महान् ॥ मेरी० ॥
 पुरुष तो है सो घरकी शोभा, उनकी तिरिया जान ।
 तिय की शोभा पतिव्रत धर्म है रक्षा करै भगवान् ॥ मेरी० ॥
 दोनों की शोभा परस्पर प्रीति पानी दूध समान ।
 जिस घर में ये दोनों खुश है वह घर स्वर्ग समान ॥ मेरी० ॥
 सुख की शोभा मीठे वचन है हाथ की शोभा दान ।
 दान की शोभा पात्र हो अच्छा कह गये पुरुष महान् । मेरी० ॥
 देह की शोभा परोपकार है धर्म उसका जो जान ।
 धर्म की शोभा दया, अहिंसा मझमें यही प्रधान ॥ मेरी० ॥

स्त्रियों के आभूषण ।

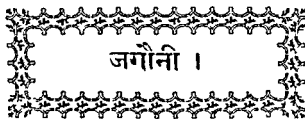
भला ओढ़ोरी सहागिन पतिव्रत की चूनरी । मलमल विद्या
 की बनवाओ, रंगत बुद्धि की रंगवाओ, गोटा गोखरू ज्ञान लगाओ,
 बूटे सत् शास्त्र अनुसार, जगत् में चमकते चूनरी ॥ १ ॥ मिस्सी मीठे

रूप (विद् के०) स्थितिः, एतदे स्थितिवंध
कहेवाय.

३ ते मोदक कोइ मीठो होय ठे, कोइ कफवो
होय ठे, अने कोइ तीखो होय ठे, तेमज कोइ
मोदकनो एकठाणीयो रस होय ठे, कोइकनो वे-
ठाणीयो रस होय ठे, इत्यादि अनेक प्रकारे
अद्वप विशेषत्व होय ठे, तेम कोइ कर्मनो शुभ
तीव्र, मंद, विपाक होय ठे, अने कोइ कर्मनो
अशुभ, तीव्र, मंद विपाक होय ठे. जेम शाता-
वेदनीयादिक कर्ममां कोइकनो शुभ रस अद्वप
होय, अने कोइकनो शुभ रस घणो होय, तेने
त्रीजोः (अणुजागो रसो णेउं के०) अणुजागो
रसो ज्ञेयः, एतदे अणुजागवंध ते कर्मनो रस-
रूप जाणवो.

ते मोदक कोइक अद्वप दलपरिमाणथी उ-
त्पन्न थयेलो होय ठे, कोइ बहु दलथी उत्पन्न

वचन उचारो, टिकुली परोपकार की धारो, पति की सेवा करो
 हरषार, सोहाग की ओढो चूनरी ॥ २ ॥ घूँघट चतुराई की घालो,
 लाजकी नथ की नाक में डालो बाजू बन्द दया का बाधो, हँसुली
 सत्य की कठ में धारो, जीव में प्यारी चनरी ॥ ३ ॥ हार ज्ञान का
 हियमें पेन्हो माला धीरजता की धारो, घरमें हिल मिल सब से
 रहना गुरु जन सेवा अगूठी गहना असीस की ओढो चूनरी ॥
 ॥ ४ ॥ पट्टु चौ दया धर्म चित धरना बेरा मान बडो का करना,
 गजरा सबकाहुकम मानना , भलाइ की ओढो चूनरी ॥ ५ ॥



आगोरी जैन बहिनो, बपुन तेर होगड़े ।

अबभी उठो सुशोला बहिनो, खुब मागयो ॥

मसार एक चमन है और पक्षी तुम हुइ ॥

जिन धम (भारतको) काइ सरपैछे, लुक्क डर नहीं नहीं ।

हिल मिलके भगिनी भाष में डिगगा कभी नहीं ॥

हि मा असत्य जोरी म नगगा कभी नहीं ॥

मन्पा निययके नाअम पैसगा कभी नहीं ॥

गाथा ३७ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

पड-पाटो.

पडिहार-प्रतिहार, पोळीओ.

असि-खड्ग, तरवार.

मद्य-मदिरा.

हड-हड.

चित्त-चितारो.

कुलाल-कुंभार.

भंडगारीणं-भंडारी.

जह-जेम.

एएसि-ए (वस्तुओ).

भावा-स्वभाव

कम्माणवि-कर्मनो पण.

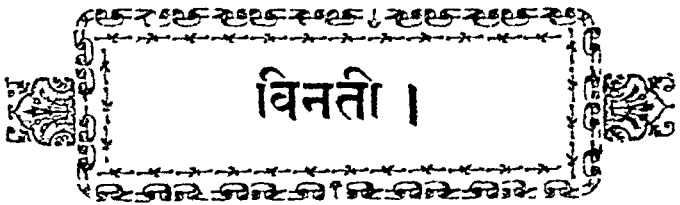
जाण-समज.

तह-तेमज.

भावा-स्वभावा.

विस्तारार्थः—(परुपरिहारसिमज्जहरुचित्तकु-
लालचंरुगारीणं के०) पटप्रतिहारासिमद्यहरु-
चित्रककुलालचंरुगारीणां, एटले पाटो १, प्रति-
हार २, खड्ग ३, मदिरा ४, हरु ५, चितारो ६,
कुंभार ७ अने भंडारी ८, (एएसि के०) एतेषां,
एटले वस्तुर्जना (जह के०) यथा, एटले जे प्र-
माणे (जावाः के०) जावाः, एटले जावो ठे. (तह
के०) तथा, ते प्रमाणे (कम्माणवि के०) कर्मणा-

जीवों की रक्षा करके, सत्य बोलना सभी ।
चोरी से हटके ब्रह्मचर्य पालना सभी ॥
अपने से बड़ों को सटा मारों पिता धर्मों ॥
एक पतिको छोड़ करके बहिनो भ्राता सुता सभी ॥
दिलको बनाके ऐसा जो, जिनदेव ध्यावेंगी ॥
क्रम से उतर के पार बहिन चैन पाओगी ॥ ३ ॥



एक विनती सुनो हमारी, हम अबला है सुता तुम्हारी ।
तुम ही माता पिता हमारे, ममता करके पालन हारे ॥
हमको जन्म आपने दिया, भली भांति है पालन किया ।
हमें धर्म से वंचित किया, अथवा नर से पशु कर दिया ॥
भूषण तो वह मूल्य पिन्हाये, लेकिन अक्षर दो न सिखाये ।
हा ! विदुषी जो हम हो पाती, कुलकी कीर्ति अवश्य बढ़ाती ॥
हम गृह देवी भी कहलाती, इस दुनियाँ को स्वर्ग बनातीं ।

नावरणीय कर्म ते जीवना अनंत ज्ञानगुणने रोके ठे.

चीजुं दर्शनावरणीय कर्म, ते पोळीया (ठमी-दार) समान ठे. जेम कोइ एक जीव राजानुं दर्शन करवा वांठे, पण पोळीयो दर्शन करवा न आपे, तेम जीवनो सामान्यपणे सर्व वस्तु देखवानो स्वप्नाव ठे, पण दर्शनावरणीय कर्मना उदयशी न देखे, ते दर्शनावरणीय कर्म चार प्रकारे ठे. १ चक्षुर्दर्शनावरणीय, २ अचक्षुर्दर्शनावरणीय, ३ अवधिदर्शनावरणीय, अने ४ केवलदर्शनावरणीय. तथा ए कर्मना उदयशी १ निद्रा, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचक्षा, ४ प्रचलाप्रचला, अने ५ शीणद्धी, ए पांच प्रकारनी निद्रा पण होय. ए सर्व मली नव प्रकारनां दर्शनावरणीय कर्म जीवनो अनंत दर्शनगुण रोक्को ठे.

प्रार्थना ।

गङ्गल ।

विद्या का हम सबों को पिता दान दीजिये ।

हमारी इस विनय पै क़रा गौर कीजिये ॥

वर्तमानमें जो हालतें हमारी हो रहीं ।

तुम से छिपी नहीं जरा तो ध्यान दीजिये ॥ १ ॥

निर्वन्ल पिता हम होरहे है ज्ञान के बिना ।

दे ज्ञान औषधि से हमें चढ़ा कीजिये ॥ २ ॥

भारत की भूमि पर हजारों सैकड़ों सती ।

विद्या के बलसे यीं पिता यह सोच लीजिये ॥ ३ ॥

इक मातके उदर में पिता भाई और हम ।

घरमें ही जन्मे हैं इसे अब सोच लीजिये ॥ ४ ॥

फिर भाइयों की शिचा में हो इस क़दर जतन ।

हम मूर्ख होके रोयें क़रा ध्यान दीजिये ॥ ५ ॥

अब विद्या भवन खोल पिता शिचा देव तुम ।

गिरी जैन जातिका पिता उदार कीजिये ॥ ६ ॥

आभूषणों में द्रव्य को तुम खर्च करते छ्यों ।

उस द्रव्य से पिता जी शिचा हमको दीजिये ॥ ७ ॥

पांचमुं आयुः कर्म, ते हरु समान ठे. जेम हरुमां पडेलो प्राणी नीकलवा वांठे, पण राजाना हुकम विना नीकली न शके, तेम ए आयुः कर्म पण थद्यपि सुखदुःख कांड पण पोते उपजावलुं नथी, तथापि चार गतिने विषे सुखदुःख नुं आधारचूत जे शरीर, तेमांहे हरुनी पेरे जीवने राखे ठे. जेम अशुभ नरकादिकनी गतिनुं आउखुं जोगवतो ठतो जीव त्यांथी नीकलवा वांठे, पण आयु पूर्ण कीधा विना नीकली न शके ए कर्मनो जीवना अविनाशी गुण रोकवानो स्वभाव ठे.

ठहुं नाम कर्म, ते चितारा समान ठे, जेम निपुण चित्रकार सारां तथ्या नरसां, काला धोला रंगनां, नांनां मोटां अनेक प्रकारना रूप आद्वेखे, तेम ए कर्मना उदयथी जीव पण चित्ररूप संसारमां देव तथा मनुष्यादिकनां रुकां रूप

स्त्रो-संसारके लिये नयी चीज ?

लूटो ! लो !! दीड़ो !!! चलो !!!!

यह पांच रत्न तुम्हारे ही लिये हैं ।

(१) सर्व-प्रशंसित, कन्या पाठशालामें पढ़ाने योग्य
ऐतिहासिक स्त्रियाँ । मूल्य ॥) मयडाक
कुमार देवेन्द्रप्रसाद सम्पादित ।

(जब बहुत थोड़ी रहगयी हैं)

(२) कन्याविद्यावलम्बिनी पुस्तकमालाका प्रथम पुष्प—
उपदेशरत्नमाला । मूल्य ॥)

लेखिका— एक जैन महिला ।

(३) स्वर्गीय श्रीमति जानकी बार्देजीका जीवन चरित्र ।
कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन द्वारा लिखित ।
(ऊपरकी दोनो पुस्तकें लेबेसे मुफ्त)

(४) एक महिलाका अनुभव । दानका सच्चा फोटो !!
दानदशादर्पण व धनगति दर्शन मूल्य ॥)

(प्रत्येक दानशीला रमणीके देखने योग्य)

(५) बालिका-विनय । एक जैनमहिला द्वारा रचित ।
बालिकाओंके कण्ठ करने योग्य सुन्दर शिक्षाप्रद पटा-
वली । मूल्य ॥)

मंगानेका पता — कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा ।

विस्तारार्थः—(नाणे के०) ज्ञाने, एटले ज्ञाना
 वरणीय, (अ के०) च, एटले अने (दंसणावरणे
 के०) दर्शनावरणे, एटले दर्शनावरणीय, (वेअ-
 णिए के०) वेदनीये, एटले वेदनीय (चैव के०)
 चैव, एटले निश्चे (अंतराए के०) अंतराये एटले
 अंतराय, ए चारे कर्ममां (अयराणं तीसं कोना-
 कोनी के०) अतराणां त्रयस्त्रिंशत्कोटिकोद्यः, ए-
 टले त्रीश कोनाकोनी, सागरोपम (विष्ट के०)
 स्थितिः, एटले स्थिति (उक्कोसा के०) उत्कृष्टा,
 एटले उत्कृष्टी जाणवी. अने (सत्तरि कोनाकोनी
 के०) सप्ततिः कोटिकोद्यः, एटले सीत्तेर कोना-
 कोनी सागरोपम (मोहणिए के०) मोहनीये, ए-
 टले मोहनीय कर्मने विषे स्थिति जाणवी. तथा
 वीस नामगोएसु के०) विशतिर्नामगोत्रयोः, ए-
 टले वीश कोनाकोनी सागरोपम नामकर्म अने
 गोत्रकर्मने विषे स्थिति जाणवी. तथा (तित्तीसं

राशिथी अनंत गुणा अने सिद्धना जीवनी रा-
 शिने अनंतमे जागे एटले परमाणुए निष्पन्न क-
 र्मस्कंध समय समय प्रत्ये ग्रहण करे ठे. ते द-
 लीयांने विषे परमाणु दीठ कषायना वशयकी
 सर्व जीवनी राशिथी अनंत गुणा रस विजागना
 परिच्छेद होय. ते रस तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम
 तथा मंद, मंदतर, मंदतमादिक अनेक प्रकारे
 होय. तेमां अशुद्ध व्याशी पापप्रकृतिनो तीव्र
 रस संक्लेश परिणामे करी बंधाय, अने शुद्ध वै-
 तालीश पुण्यप्रकृतिनो तीव्र रस विशुद्धिए करी
 बंधाय, तथा मंद रसनो तेथकी विपरीत होय.
 ते आवी रीते-शुद्ध प्रकृतिनो मंद रस संक्लेश
 परिणामे करी बंधाय, अने अशुद्ध प्रकृतिनो
 मंद रस विशुद्धिए करी बंधाय.

इत्थे प्रकृतिना एकठाणीया प्रमुख रस जेणे
 करी बंधाय, ते कहे ठे-अशुद्ध प्रकृतिनो चौठा-

णीयो रस अनंतानुबंधी या कपाये करी बंधाय,
 त्रिठाणीयो रस अप्रत्याख्यानी या कपाये करी
 बंधाय, वेठाणीयो रस प्रत्याख्यानी या कपाये करी
 बंधाय, अने एकठाणीयो रस संज्वलन कपाये
 करी बंधाय, तथा शुद्ध प्रकृतिनो रस तेथकी
 विपरीतपणे जाणवो ते आवी रीते-शुद्ध
 प्रकृतिनो चोठाणीयो रस संज्वलन कपाये करी
 बंधाय, तथा त्रिठाणीयो रस प्रत्याख्यानावरण
 अने अप्रत्याख्यानावरण कपाये करी बंधाय, वे-
 ठाणीयो रस अनंतानुबंधीया कपाये करी
 बंधाय, अने एकठाणीयो रस तो शुद्ध
 प्रकृतिनो वेज नही, अतरायनी पाच प्रकृति देश
 घाती वे, तथा एक केवलज्ञानावरण विना वा-
 कीनी चार-प्रकृति ज्ञानावरणीयनी तथा एक
 केवलदर्शनावरण विना त्रण प्रकृति दर्शनावर-
 णीयनी तथा संज्वलन कपायनी चार प्रकृति

संतपयपरूवणया, द्व्वपमाणं च खित्त
फुसणा य ॥ कालो अ अंतर जाग,
जावे अप्पावहू चेव ॥ ४३ ॥

गाथा ४३ मीना बूटा शब्दना अर्थ.

संतपय—छता पदनी.
परूवणया—प्ररूपणाद्वार.
द्व्वपमाणं—द्रव्यप्रमाणद्वार
खित्त—क्षेत्रद्वार.
फुसणा—स्पर्शनाद्वार.
च—अने.
कालो—कालद्वार.

य—अने.
अंतर—अंतरद्वार.
भाग—भागद्वार.
भावे—भावद्वार.
अप्पावहू—अल्पवहुत्वदार.
चेव—निश्चे.

विस्तारार्थः—मोक्षने विषे ठता पदनी प्ररू-
णा ते गति प्रमुख मार्गणाद्वारने विषे सिद्धनी
त्तानुं निरूपण करवुं, एटले चाद ~~मार्गणामां~~
सिद्धपद कइ मार्गणाए ठे? एवी प्ररूपणा कर-
वी, ते पहेलुं (संतपयपरूवणया के०) सत्पद-

प्ररूपणता, एटले ठता पदनी प्ररूपणानुं छार.
 सिद्धनां जीवद्रव्यनुं प्रमाण करवुं, एटले सिद्ध-
 ना जीवद्रव्य केटलां ठे ? ते विचारवुं, ए वीजु
 (द्वपमाण के०) द्रव्यप्रमाण, एटले द्रव्यप्रमाण-
 छार (च के०) वली सिद्धने अवगाहना क्षेत्र
 केटलुं ठे ? ते विचारवुं, ए वीजु (खित्त के०) क्षेत्र,
 एटले क्षेत्रछार केटला आकाशप्रदेशने सिद्धना
 जीव फरसे ? एम जे विचारवुं, ते चोथुं (फुसणा
 के०) स्पर्शना, एटले स्पर्शनाछार अहीं जे क्षेत्र
 अवगाहीने रहे, ते अवगाहना, एने त्या अ-
 वगाही रहेता जेटलुं क्षेत्र फरसे, ते स्पर्शना
 जाणवी जेम परमाणुने एक प्रदेशअवगाहना-
 रूप क्षेत्रने सात प्रदेशन स्पर्शना होय (य के०)
 च, अने का-वाश्रयी मिडने साटि अनत
 रूप करवुं, ते पांचमुं (काजो के०) काल, एटले
 कालुं छार (अ के०) च, तथा सिद्धना जीवने